दयानन्दोपनिषद्

लेखक

भीमसेन विद्यालङ्कार

नवयुग ग्रन्थमाला का ९वां पुष्प

दयानन्दोपनिषद्

अथवा

दयानन्द-बोध

[प्रथम भाग]

सम्पादक
भीमसेन विद्यालङ्कार
हिन्दी संदेश मन्दिर,
१७, मोहनलाल रोड, लाहौर।

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़,
अनारकली, लाहौर।
१८ अप्रैल १९४६

प्रथम संस्करण] [मूल्य १॥)

प्रकाशक—
राजपाल एण्ड सन्ज़
अनारकली, लाहौर

मुद्रक—
विश्वनाथ एम० ए०
दी आर्य प्रेस लिमिटिड,
१७ मोहनलाल रोड, लाहौर।

भूमिका

[ले०—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी प्रधान आर्य सार्वदेशिक सभा]

ऋषि दयानन्द १९वीं शताब्दी के सबसे बड़े वेदों के विद्वान् थे। वे न केवल वेद के विद्वान् थे अपितु मन्त्रद्रष्टा श्रेणी के ऋषि भी थे। उन्होंने मन्त्रों का दर्शन करके जो अर्थ मन्त्रों के किये वे अपूर्व और अब तक के वेद के भाष्यकारों के किये अर्थों से विलक्षण हैं। श्री सायणाचार्य ने वेदों को केवल यज्ञ का ग्रन्थ समझा था। श्री महीधर ने उनमें अश्लीलता को भी समाविष्ट समझा था। पश्चिमी विद्वानों और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों ने भी, उन्हें इतिहास की पोथी समझ रक्खा था। परन्तु ऋषि दयानन्द की कुशाग्र बुद्धि ने इन प्रवाहों को पलट कर वेदों की एक नई दुनिया रच दी। उन्होंने घोषणा की कि वेद दुनिया के पुस्तकालयों के ही नहीं, बल्कि दुनिया के आदिम ग्रंथ हैं; और उनका प्रादुर्भाव मनुष्यों की पहली नस्ल ही में हुआ था। इसलिये उनके एक एक शब्द यौगिक हैं। उनमें इतिहास का चिह्न भी नहीं। इतिहास प्रारम्भ के ग्रन्थों का विषय नहीं हो सकता, दुनिया का कारोबार जब चलने लगता है और अनेक नसलें और अनेक युग बीत जाते हैं। तब इतिहास की रचना हुआ करती है। उन्होंने वेदों में इतिहास मानने वालों को बतलाया कि वेदों में आए भारद्वाज आदि शब्द, पूर्व मीमांसाकार जैमिनि मुनि की "श्रुति सामान्य मात्रम्" वाली शिक्षा के अनु-

सार यौगिक शब्द हैं, व्यक्ति विशेषों के नाम नहीं। वेदों के शब्दों को लेकर ही पीछे से लोगों ने इन्हें अपना नाम भी बना लिया। कहीं कहीं मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के नाम वाचक शब्द, वेद मन्त्रों में और विशेष कर उन्हीं वेद मन्त्रों में, जिनके वे द्रष्टा होते हैं, आते हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि वे शब्द उन मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के नाम हैं; अपितु मन्त्रार्थ दर्शन के बाद उन ऋषियों द्वारा उनके बार बार प्रचार करने से, लोग उन्हें उन्हीं शब्दों से पुकारने लगे। एक उदाहरण से यह बात भली भांति समझी जा सकेगी। १८९१ या ९२ ई० में एक व्यक्ति ब्रह्मानन्द नामक आर्यसमाज के ट्रैक्टों को छपवा कर घूम फिर कर उन्हें बेचा करते थे। वह साधुओं का सा भगवां वस्त्र पहना करते थे। इसलिये कई लोग उन्हें साधू ही समझा करते थे। वह एक भजन बहुतायत के साथ गाया करते थे—

"दयानन्द स्वामी हमें न जगाते, तो बछिया के बाबा हमें लूटखाते"।

बार बार इस भजन और इस कड़ी को उनसे सुन सुन कर लोगों ने उनका नाम ही "बछिया के बाबा" रख दिया। अब जहां कहीं भी वे जाते तो पूछने पर लोग कह दिया करते थे कि वे तो "बछिया के बाबा" आये हैं। इसी उदाहरण के अनुसार जो मन्त्रद्रष्टा अपने दर्शित मन्त्र को बार बार उच्चारण करते थे तो लोग मन्त्र के एक शब्द को उनके नाम की जगह प्रयुक्त करने लगे। अस्तु।

ऋषि दयानन्द ने यह भी घोषणा की कि वेद में उन समस्त विद्याओं के बीज हैं जिन की उपयोगिता मनुष्यों को लोक और परलोक दोनों की उन्नति के लिये हो सकती है। उदाहरण के लिये उन्होंने वेद में विमानों (हवाई जहाज़ों)

समुद्री जहाज़ों आदि के बनाने और प्रयोग में लाने की शिक्षा का विधान होना प्रकट किया। इस पर लोगों ने कहना शुरू किया कि आज कल की प्रचलित वस्तुओं को देख कर उन्होंने वेदों में उनके होने का विधान किया है। ऐसे आक्षेपकों को हम बतला देना चाहते हैं कि जिस समय ऋषि दयानन्द ने यह घोषणा की थी उस समय पश्चिमी देशों में हवाई जहाज़ नहीं बने थे। इसके सिवा बालमीकीय रामायण में श्री रामचन्द्र आदि के लंका से अवध आने का उल्लेख एक हवाई जहाज़ (पुष्पक विमान) द्वारा किया गया है। इस जगह हम एक प्राचीन ग्रंथ "अगस्त्य संहिता" की बात कह देना आवश्यक समझते हैं, जिस बात को सुन कर इन आक्षेपकों की आंखें खुल जावेंगी।

अगस्त्य संहिता

अमरीका की एक रासायनिक संघ (Chamical Society) के, एक विशेष अधिवेशन में, एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् डा० "कोकट ब्रद" ने जिन्होंने प्राचीन भारत और प्राचीन मिश्र के सम्बन्ध में बहुमूल्य खोजें की हैं; एक निबन्ध पढ़ा था। इसमें उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया था कि हाईड्रोजन और औक्सीजन की खोज सब से पहले "कैविडिश" और "प्रीस्टले" ने नहीं; अपितु अगस्त्य मुनि ने की थी। सोलहवीं सदी में संग्रह की हुई अगस्त्य संहिता नाम की एक प्राचीन संहिता डाक्टर साहब को उज्जैन में मिली थी। उसके अनुसार हाईड्रोज़न, औक्सीजन आदि गैसों, सूखी बैट्री, इलेक्ट्रोपेंटिंग, पतंगों आदि की खोज का श्रेय अगस्त्य मुनि को है। उन्होंने औक्सिजन का नाम प्राणवायु और हल्के होने से हाईड्रोज़न का

नाम ऊर्ध्वगामिनी रखा था। ग्रंथ में पानी के विश्लेषण आदि की अनेक बातें अंकित हैं।

पानी का विश्लेषण

तांबे के एक साफ़ पत्तर को मिट्टी के बरतन में रखकर उस पत्तर के चारों ओर नीला थोथा भर दो। उस पर लकड़ी का नर्म बुरादा लपेट दो। फिर एक पारा चढ़ा जिस्त का पत्र, बुरादे के ऊपर रक्खो। इन दोनों के स्पर्श से प्रकाश पैदा होगा, जिस का नाम "मित्रावरुण" (घनोद+ऋणोद विद्युत) है। इसके द्वारा पानी दो गैसों में विभक्त हो जाता है। (प्राणवायु वा ऊर्ध्वगामिनी)

विमान का उड़ना

उसी संहिता के अनुसार जब यह ऊर्ध्वगामिनी एक छिद्र-विहीन थैले में जिसमें हवा भी न जा सके, भर दी जाती है और यह थैला विमान के सिरे से बांध दिया जाता है तब वह ऊर्ध्वगामिनी गैस अपने हल्के पन के कारण, उस विमान को आस्मान में उडा ले जाती है। थैले के बनाने, बैट्री तथा इलेक्ट्रो-पेंटिंग की विधि भी उसी ग्रंथ में अंकित है।

डाक्टर कोकट नद के दिये उपर्युक्त विवरण से साफ़ ज़ाहिर हो जावेगा कि ऋषि दयानन्द ने विमान विद्या आदि की वेदों में होने की चर्चा करके वेदों को बहुत बढ़ा कर (ovresesti-mate) करके नहीं प्रकट किया है। जबकि वेदों के सहस्रों वर्षों के बाद भी इस देश में विमानों का बनाना आरम्भ था। समरांगण सूत्रधार आदि ग्रन्थों से भी ऋषि दयानन्द के कथन की पुष्टि होती है।

वेद जैसे ग्रन्थ और ऋषि दयानन्द जैसे व्याख्याता को पाकर देश क्यों न अपने को सौभाग्यशाली समझेगा।

(२) श्रीयुत भीमसेन विद्यालंकार ने यह ग्रन्थ लिख कर उपर्युक्त उच्च विचारों का सरल से सरल शब्दों में जनता के सम्मुख रखने का सफल प्रयत्न किया है। ऋषि दयानन्द लिखित भावार्थों का, जो उन्होंने ऋग्वेद भाष्य के प्रसंग में लिखे हैं, इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है। प्रथम वेद मन्त्रों का संस्कृत भाषा में भावार्थ, उसके बाद उस संस्कृत भावार्थ का सरल हिन्दी अनुवाद इस संग्रह में दिया गया है। हिन्दी अनुवाद को शुद्ध करने का भी पूरा पूरा यत्न किया गया है। यह संग्रह यद्यपि समस्त ऋग्वेदभाष्य का नहीं है अपितु उसके कुछ भाग का ही है; फिर भी यह ग्रंथ काफी बड़ा हो गया है। जो लोग मन्त्र के शब्दों का भावार्थ से मिलान नहीं कर सकते उनके लिये भावार्थ ही ऋषि वचन होने से, बड़ी उपयोगिता है और वे उससे अच्छा खासा लाभ उठा सकेंगे। भावार्थों में पाठकों को न केवल परलोक की बात मिलेगी अपितु लोक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने वाली कला कौशल की बातें भी बहुतायत से मिलेंगी जिससे धर्म के दोनों अंग अभ्युदय और निःश्रेयस की पूर्ति हो सकती है। इस ग्रथ को लेखक ने सात भागों में विभक्त किया है। जिनका विवरण भी इस प्रकार है—

(१) ईश्वर स्वरूप निरूपण। (२) जीव स्वरूप निरूपण। (३) स्त्री पुरुष सम्बन्ध निरूपण। (४) अध्यापक शिष्य स्वरूप निरूपण। ये चार परा (परलोक) सम्बन्धी विभाग हैं। आगे के तीन भाग अपरा विद्या से सबन्धित हैं।

(५) प्रकृति स्वरूप तथा शिल्प विद्या निरूपण। (६) सभा सेना संगठन प्रकरण तथा (७) मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य निरूपण।

इन विभागों से स्पष्ट है कि ग्रन्थ के पढ़ने वालों को कितना उच्च दार्शनिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(३) इस ग्रन्थ की एक बड़ी उपयोगिता कथा के लिये भी हो सकती है। सरल से सरल भाषा में कुछ भी न पढ़े लिखे लोग उसे सुन कर उससे लाभ उठा सकते हैं। कम पढ़े लिखे लोग चाहे पुरुष हों, या स्त्री अपने स्वाध्याय के लिये इस ग्रन्थ को सफलता के साथ काम में ला सकते हैं और ग्रन्थ को बिना किसी कठिनता का अनुभव किये अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ की उपयोगिता स्पष्ट है। मैं ऐसे उत्तम ग्रंथ के तयार करने के लिये लेखक को बधाई देता हूं।

२२-३-४६ नारायण स्वामी

भिक्षु की झोली

"दयानन्दोपनिषद्" का नाम सुनकर पाठक के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह उपनिषद् कहां से मिली, किसने लिखी, और कब लिखी ? इसलिये इसके संबन्ध में दो तीन शब्द लिखने आवश्यक हैं—

हरद्वार की गंगा के उस पार, चंडी हिमालय की उपत्यका में, नील धारा के तट पर, गुरुकुल भूमि में निवास करते हुए विद्यार्थी जीवन में, वहां के सात्विक वातावरण में—आचार्य श्रद्धानन्द की संक्रामक ऋषिभक्ति—और आचार्य रामदेव की ऋषि दयानन्द के सिद्धांतों में अटल श्रद्धा ने—लेखक के उत्सुक बाल जिज्ञासु हृदय में, ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और उनकी क्रांतिकारी विचार धाराओं के लिये आकर्षण और समर्पण का भाव पैदा किया।

विद्यार्थी जीवन काल में स्वामी दयानंद के जीवन-चरित में उनकी रोमांचकारी जीवन यात्रा की घटनाओं को पढ़ा। हृदय में भावना उठी कि उन स्थानों का दर्शन करूँ जहां २ ऋषि दयानन्द ने यात्रा की थी। कुंभ के मेले—पर—अर्ध कुम्भी के पर्व पर-पाखंड-खंडिनी पताका वाले रेतीले मैदान को देखा। दयानन्द से शास्त्रार्थ करने वाले, उनका साक्षात्कार करने वालों से वार्तालाप करने की इच्छा को पूरा किया। ऋषि दर्शन की भावना दिन प्रतिदिन तीव्र होती गई। इस भावना को पूरा करने के लिये, उन द्वारा कीगई योग साधना की तपस्या के अनुकरण में, एक साधु का शिष्य बन कर हठ योग की नेती धोती आदि क्रिया को सीखने के लिये ९वीं श्रेणी में एक

हठ योगी और अर्धराज योगी से खेचरी मुद्रा और गायत्री जाप सीखे। कई महीनों साधना भी की। परन्तु ऋषि दर्शन न हुए। इसी लटक में ९वीं, १०वीं और महाविद्यालय जीवन में १० उपनिषदों के संग्रह में ऋषि को देखने के लिये उपनिषद् रहस्य लिखा। दयानन्द काव्य भी लिखा। देखते २ गुरुकुल निवासकाल समाप्त हो गया। स्नातक बन कर वहाँ से विदाई ली। ऋषि दर्शन की अपूर्ण इच्छा के साथ बाहर निकला—

१९२२ ई० के अगस्त मास से लेकर १९२२ सितम्बर मास तक ऋषि दर्शन की अभिलाषा से दयानन्द तीर्थ यात्रा की। देव भिक्षु का चोला पहना—अजमेर—निर्वाण स्थान में शमशान में—उनकी हड्डियों के शेष तथा राख को ढूँढा—उनको स्मृति रूप से रखना चाहता था—परन्तु पता लगा कि ऋषि की इच्छानुसार वह कहीं खेतों में खाद बन कर मानव समाज की सेवा कर रहे हैं। वहां से जन्मस्थान—मोरवीटंकारा सज्जनपुर के गलियों बाजारों नदियों के किनारों, वहां के शिव मंदिरों, जडियेश्वर शिव महादेव के मंदिरों में अकेले विचरते हुए, ऋषि दर्शन देखने के लिए कई दिन रात बिताए। उनके सम्बन्धियों के घरों को देखा। उनके दूर के संबन्धियों की छाया में उनकी छाया को देखना चाहा। इसके बाद दयानन्द तीर्थ यात्रा के प्रसंग में उदयपुर और आबू के स्थानों भी देखा। जहां ऋषि ने कर्म प्रधान नए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र बनाने के लिये सत्यार्थ प्रकाश और वेदभाष्य के यज्ञ रचे थे। उदयपुर के गुलाब बाग में दो दिन बिताए, जहां वह सत्यार्थ और वेदभाष्य लिखाते थे और प्रतिदिन सायंकाल जनता को साधारण जनता और महाराणा सज्जनसिंह को मनुस्मृति का उपदेश देते थे; और यहीं उन्होंने ऋषि मुनियों के प्यारे, वैदिक संस्कृति के उद्भव स्थान

गुरुकुल खोलने की भी उत्कट इच्छा प्रकट की।

× × ×

दयानन्द तीर्थ यात्रा के प्रसंग में लिखी गई दिनचर्या डायरी के कुछ अंश

इन्हीं दिनों आचार्य रामदेव जी के भी ऋषि दयानन्द जन्म स्थान का निर्णय करने के लिये इधर आने का समाचार था, परन्तु वह आए नहीं। मैं अकेला ही मोरवी के लिये रवाना हुआ। महसाना तक आते २ रास्ते में एक अजमेरी रामनाथ नाम के सज्जन मिले। आवश्यक कार्य कर उनके साथ मोरवी के लिये टिकट लिया। गाड़ी बांकानेर में बदली। सवेरे ६ बजे २३ अगस्त १६२२ बुधबार १६२२ ई० (१ भाद्रपद को) मोरवी पहुंचा। टंकारा को जाने वाली ट्राम जा चुकी थी अतः आज यहीं एक धर्मशाला में रहा। बहुत पूछताछ की कि कोई आर्यसमाज तो यहां नहीं। कोई नहीं मिला। कबीर पंथी के मंदिर में जाकर मिलने योग्य व्यक्तियों के पते लिखे। इस मंदिर के रहने वालों, तथा यहां की स्त्रियों ने बताया कि स्वामी दयानन्द टंकारा के रहने वाले थे। यह भी कहा कि उनके सम्बन्धी टंकारा से ४ कोस दूर मिताणा कसबे में स्वामी जी (दयानन्द) के पिता जी की बहन के वंशज रहते हैं। मोरवी के रहने वाले नहीं थे। मोरवी में दो मंदिर हैं। कुबेर नाथ का शहर के अन्दर; दूसरा नील कंठ का शहर से १ मील से कम दूरी पर नदी मछुकहाटा के किनारे पश्चिम की ओर। भोजन करके चुन्नीलाल विनय चन्द की पूछताछ की। उनकी दुकान बन्द थीं। धर्मशाला में आराम किया। धर्मशाला में मक्खियां बहुत थीं बहुत गंद था। दिल में एक बार आया कि चलो लौटो क्या फिजूल समय खराब कर रहा हूं, अच्छा होता कहीं बैठकर

ध्यान ही लगाने लायक होता। अब न इधर के न उधर के। न इधर की भाषा जानूं—न कोई परिचित है। पुनः दिल को ढांढस देकर टंकारा देखना निश्चित किया। रात भर नींद नहीं आयी। प्रातः काल उठकर एक वार फिर दूसरे रास्ते से खोज के लिये निकला। मच्छुकहाटा नदी इन दिनों उतरी हुई है—उसके किनारे जो पक्के राज प्रासाद हैं वह उत्तम और अच्छे ढंग के बने हुए हैं। इस बार दीवान रणछोड़दास के घर भी पहुंचा वह भी बम्बई गये हुए थे। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से पूछा क्यों यहां कोई आर्य समाजी है या नहीं। उसने टालमटोल की—मैं वहां से भ्रमण करता हुआ नीलकंठ के मंदिर में आकर बैठ गया। मंदिर तो मैला कुचैला था। परन्तु मंदिर के खुले आंगण में—बाहर ही खुली हवा में बैठ गया। सायंकाल ६ बजे तक श्री छोटेलाल जी जिन्हें विधवा विवाह करने के कारण आर्य समाजी कहते थे—की प्रतीक्षा थी। यह व्यक्ति मोरवी स्टेट के फस्ट क्लास मैजिस्ट्रेट हैं। ४० साल से काम कर रहे हैं। इन्होंने बताया कि सम्बत् १६३० में जब स्वामी जी राजकोट आए थे तो वहां किङ्गस कालेज में मोरवी के युवराज को देखकर कहा था कि यह हमारे राजा हैं। श्री छोटेलाल मुझे अपने घर ले गये—वहां भोजन किया। मूर्ति पूजा पर अंग्रेजी में बातचीत भी की। यह व्यक्ति स्वामी जी के भक्त हैं अपनी खपत के धुनी हैं। इनके घर में स्वामी दयानन्द का फोटो है। साथ ही साथ घर में पौराणिक मूर्ति रखी हुई है। उसकी पूजा भी करते हैं। इनसे स्वामी दयानन्द जी के जन्म स्थान के विषय में बात चीत की—यह सज्जनपुर को स्वामी जी का जन्म स्थान बताते हैं। प्रातःकाल ६ बजे इनसे टंकारा और सज्जनपुर के व्यक्तियों के नाम परिचय पत्र लिये और यहीं की ट्राम से टंकारा के लिये प्रस्थित

हुआ। यह व्यक्ति आधे आर्य समाजी हैं। सज्जनपुर गांव टंकारा से ६, ७ मील की दूरी पर है। वहीं दो मील की दूरी पर जडियेश्वर महादेव (जडेश्वर महादेव) का बड़ा मंदिर है। स्वामी जी के पिता टंकारा में दक्खिनी के नीचे काम करते थे। उन दिनों टंकारा और सज्जनपुर आदि गांव बड़ौदा को लीस lease पट्टे पर दिये हुए थे। स्वामी जी टंकारा में पढ़े लिखे थे। उन का जन्म स्थान सज्जनपुर था। मिताणा का मंदिर छोटा सा है— इसमें एक दो आदमी ही बैठ सकते हैं। जडियेश्वर के मंदिर में अब भी बहुत लोग आते हैं। इधर के लोगों में ऋषि दयानन्द के प्रारम्भ काल के मूलशंकर और दयाराम—दो और नाम सुनाई देते हैं—टंकारा से ३॥ कोस की दूरी पर पूर्व दिशा में—जंगल में जडियेश्वर महादेव का मंदिर है इधर के लोग माघ तथा श्रावण में शिवरात्री के निमित्त पूजा के लिये यहां आते हैं। यह मेला दो समय होता है।

सज्जनपुर जडियेश्वर से उत्तर की ओर एक कोस पर है वहां ब्राह्मणों के २-४ घर हैं एक औदीच्य का भी घर है वह यजुर्वेदी हैं। स्वामी जी को महाराजा मोरवी ने निमन्त्रण दिया—यह बात परम्परा से सुनी जाती है—। २४-८-१६२२ को ८॥ बजे टंकारा पहुंच कर स्नान संध्या के बाद प्रश्नोपनिषद् पढ़ी—यहां के आचार्य गोबिन्द राय सज्जन से मिला। उन्होंने ही स्वामी जी के जन्म स्थान में विषय में ऊपर लिखी तथा निम्न बातें बताईं। यहां कुबेर महादेव का मंदिर है। स्वामी जी का जन्म स्थान भी देखा। टंकारा में पहले वेदों का बहुत अध्ययन होता था। अब ४० साल से कम हो गया है। उन दिनों से अब ¼ आबादी कम हो गई है। उस समय अच्छा बड़ा कसबा था—रात को टंकारा महालक्ष्मी नारा-

यण मंदिर में शयन किया। खुली हवा और एकान्त में— निश्चिन्तता पूर्ण आनन्द का अनुभव किया। प्रातःकाल ५ बजे उठकर संध्याध्यान के बाद ६ बजे आचार्य हर जीवन के साथ सज्जनपुर की ओर चला। अपना खद्दर का थैला कंधे में लटकाए, बिस्तर को कभी बगलों में और कभी कंध पर थामे धीरे २ चला। रास्ते के दृश्य सुहावने थे। खेतों की हरियाली मनभावनी थी। परन्तु मार्ग कीचड़ कीचड़ हुआ हुआ था। साथ के साथी से दिखाई दे रहे धान और वृक्षों के नाम परिचय पूछता हुआ ६।। बजे सज्जनयुर गांव पहुंचा। पिछली रात तथा प्रातःकाल उपवास किया। अतः बोझे के साथ इतना चलना कठिन था। सज्जनपुर पहुंचा। सर्वथा थका हुआ था। कंधे टूट रहे थे शरीर चूर चूर हो रहा था—वहां प्रागजी पोपट भक्त के पास पहुंच कर स्नान किया पुनः जलपान कर इनसे दयानन्द जन्म स्थान के विषय में बात चीत की। कोई नई बात न पता लगी। पोपट जी से धर्मचर्चा हुई यह मूर्ति पूजा को साधन मानते थे—इस चर्चा से अनुभव किया कि यदि आर्य समाजी प्रचारक खंडनात्मक प्रचार भावना के स्थान पर स्वधर्म मंडन करें और लोगों को अपने विचार स्वीकृत करने के लिए उत्साहित करें तो भारी कृत कार्यता हो सकती है।

यहां से एक आदमी के साथ समीप के जडेश्वर (जडियेश्वर) महादेव के मंदिर के दर्शन किये। मंदिर एक छोटी सी पहाड़ी पर है नीचे यात्रियों के रहने के स्थान हैं। मंदिर बहुत बड़ा विशाल है। महादेव का लिंग हैं। इसे स्वयम्भू का मंदिर भी कहते हैं, शिवरात्री के दिन आस पास के गावों के लोग यहां आते हैं। बड़ा भारी मेला लगता है। कइयों का कहना है कि स्वामी दयानन्द

को बोध इसी मंदिर में हुआ था। मंदिर दर्शन करके अकेला ही बाँकानेर की ओर पैदल, सामान कंधे पर डाले चल दिया। रास्ते के मनोहर दृश्यों तथा बावड़ियों को देखता हुआ सायंकाल सूर्यास्त के साथ २ बांकानेर रजवाड़े में पहुंचा। बाजार में से होकर निकला—मेरे लम्बे चोले तथा खद्दर के विचित्र वेश को देखकर, आश्चर्यचकित होकर देखते और पूछते कहां से आए हो, कौन हो? यही उत्तर देता गंगापार—हरद्वार से—आया हूं विद्यार्थी हूं। रात को रेलगाड़ी से महसाना पहुंचा। महसाना से मोटर आबू—वहां से अजमेर ३०-२-२६ को अजमेर लौटा—जन्म स्थान की खोज करते हुए—दयानन्द तीर्थ यात्रा प्रसंग में निर्वाणस्थान को देखकर—२-६-२२ को उदयपुर १२ बजे पहुंचा। उदयपुर रियासत की अपनी गाड़ी है। उदयपुर में बाबू रामनारायण जी के घर पर पहुंचा - उनके दर्शन किये—आप की आयु इस समय ६५ वर्ष की है। आपने स्वामी जी के दर्शन ही नहीं। अपितु उनकी सेवा भी की है। जिस गुलाबबाग में स्वामी जी रहा करते थे वहीं यह काम करते थे। इससे पहले जब स्वामी जी अजमेर के पुष्कर के ब्रह्मा के मंदिर में रहते थे तब भी आपने उनके दर्शन किये थे। इनके घर में स्वामी जी के दो तीन उत्तम फोटो थे। इनसे मिलकर—स्वामी जी का निवास तथा कार्य करने का स्थान गुलाब बाग देखा। उदयपुर के बा० राम नारायण से पूछा कि स्वामी जी का समय विभाग क्या था—इन्होंने बताया प्रातःकाल तीन बजे उठकर बाहर घूमने निकल जाते थे। पुनः स्नान करके व्यायाम करते थे। संध्या ध्यान के बाद पंडितों को पुस्तक लिखाते थे।

पुनः मध्याह्न में भोजन करके पुनः पुस्तकें लिखाते थे तथा

आवश्यक काम करते थे। सायंकाल तक यहीं काम करते थे। सायंकाल प्रतिदिन बाग में उपदेश होता था। पुनः ध्यान में लीन होकर दुग्ध पान कर १० बजे तक काम करते थे। कभी खाली नहीं बैठते थे। सायंकाल गुलाब बाग में बैठकर ही उपदेश देते थे। महाराणा सज्जनसिंह भी यहीं उपदेश सुनने आते थे। निकम्मे बैठे जप आदि करने के पक्ष में नहीं थे—कर्म पुरुषार्थ के पक्षपाती थे। (देव भिक्षु, का रोजनामचा)

दयानन्द शताब्दी के अवसर पर मथुरा में विरजानन्द की कुटिया में उनको देखना चाहा, यहां उनके आत्मा की विभूति आर्यों के दिव्य जलूस में दिखाई दी। यहां ऋषि भक्त जनता की ऋषि की श्रद्धा गंगा में, दयानन्द के अलौकिक आध्यात्मिक रूप के दर्शन हुए।

× × ×

इन यात्राओं तथा भावनाओं ने मेरे मन की अवस्था यह कर दी कि आए दिन सामने आने वाली हरेक समस्या का हल दयानन्द के ग्रन्थों में ढूंढने की आदत पड़ गयी। राजनीति, धर्म-नीति, शिक्षा नीति, और व्यक्तिगत जीवन की पहेलियों के उनके ग्रन्थों में दिखाई देने लगे। इन यात्राओं में उनके भौतिक दर्शन तो क्या होने थे, हां हृदय मन उनके विचारों में ओत-प्रोत हो गये। भिक्षु का चोला छोड़ कर ऋषि, की शिक्षाओं के अनुसार ३० वर्ष में गृहस्थी की पिटारी हाथ में ली। लाहौर में रहते हुए ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज वच्छोवाली का सदस्य बना। दयानन्द की विचार धाराओं का प्रचार करने वाली आर्य प्रति-निधि सभा पंजाब के वातावरण में, अपने सार्वजनिक जीवन को समर्पित किया।

दैनिक स्वाध्याय प्रसंग में—सत्यार्थ प्रकाश में आचार्य के सौम्यरूप और रुद्ररूप के दर्शन हुए। इन्हीं वर्षों में यजुर्वेद और ऋग्वेद के दयानन्द भाष्य पढ़ते हुए, उनके संस्कृत आर्य भाषा भावार्थों में ऋषि वर के सार्वभौम विचारों की झलक दिखाई दी। उनके औपनिषद् रूप के, केवल सौम्यरूप के दर्शन हुए। मन में भावना पैदा हुई। इन भावार्थों को विषय क्रम से संकलित तथा वर्गीकरण कर दयानन्दोपनिषद् नाम से प्रकाशित किया जाय। यह दयानन्दोपनिषद् इसी भावना का मूर्त रूप है। अथवा आज तक ऋषि दर्शन की अभिलाषा से अनेक स्थानों पर, अनेक वेशों तथा रूपों में विद्वानों से ही भिक्षा मांगने की धुन में विचरते हुए, भिक्षु की झोली में जो कुछ प्राप्त हुआ वह "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" के अनुसार दयानन्दोपनिषद् के नाम से आर्य जनता के सामने समर्पित कर रहा हूं। प्रस्तुत ग्रन्थ में दयानन्द कृत ऋग्वेद भाष्य के भावार्थों का संग्रह है और यह प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित हो रहा है। दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य के भावार्थों का संग्रह दयानन्दोपनिषद् के द्वितीय भाग के नाम से प्रकाशित होगा। इनके कुछ अंश आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के साप्ताहिक आर्य के साप्ताहिक स्वाध्यायों के स्तम्भों में दयानन्दोपनिषद्, नाम से प्रकाशित भी किये गये थे। उनको प्रकाशित करते हुए जो जो भावनाएं हृदय में पैदा हुई थीं, उन भावनाओं के उल्लेख के साथ—सभा की हीरक जयन्ती के अवसर पर यह भेंट आचार्य दयानन्द के प्रेमियों के सामने अर्पित कर रहा हूं।

× × ×

"प्राचीनकाल के ऋषि मुनियों ने आत्म-साक्षात्कार करने के

बाद वेद मन्त्रों का अनुशीलन और मनन किया था। उसके द्वारा उन्हें वेदमंत्रों के भावार्थ प्रत्यक्ष हुए थे। उस समय की मनुष्य जाति की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए, उन्होंने अपने भावार्थों को लेखबद्ध किया था। यही भावार्थ केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, छन्दोग्योपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि के नाम से हमारे सामने उपस्थित हैं। इन उपनिषदों में त्रिकाल सत्य रूप तत्वों का मनुष्य मात्र के लिए पारमार्थिक और व्यावहारिक दृष्टि से प्रतिपादन किया गया था। उपनिषदों ने मनुष्य जाति को स्वर्गीय शांति प्रदान की।

वर्तमान युग में ऋषि दयानन्द ने योग साधन तथा ज्ञान साधन द्वारा आत्म साक्षात्कार किया। वेदों का अनुशीलन किया और यजुर्वेद-ऋग्वेद के भाष्य तथा भावार्थ लिखे। दयानन्द वेद-भाष्य के पदार्थ अन्वय, वेद के 'पण्डितों' के लिये विचार तथा अनुशीलन के लिए परम सहायक हैं। ऋषि दयानन्द वेद को केवलमात्र पण्डितों तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। वह "यथेमां वाचं कल्याणीम्" में निर्दिष्ट सत्य के अनुसार वेद-मन्त्रों की सचाई को साधारण से साधारण जनता तक पहुँचाना चाहते थे। इस प्रकार की साधारण जनता के लिये, उन्होंने प्रत्येक मन्त्र के भावार्थ संस्कृत और लोक-भाषा आर्य-भाषा में भी लिखे। इन भावार्थों में मनुष्य जाति की वर्तमान समस्याओं, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उन पर प्रकाश डालने के लिये, मार्ग प्रदर्शन के लिये, वेद-मन्त्र की भावना के आधार पर व्यक्ति विशेष तथा जाति देश विशेष की ऐतिहासिक परम्प-राओं से स्वतन्त्र, प्रत्येक मनुष्य को दिखाई दे रहे प्राकृतिक केतुओं

पताकाओं द्वारा निर्दिष्ट, सचाइयों का विवेचन किया। यह सत्य तत्व वर्तमान युग की मनुष्य जाति की पारमार्थिक और व्यावहारिक आवश्यकताओं और समस्याओं को हल करते हैं।

आर्य परिवारों और आर्यसमाजों के सत्संगों में इस दयानन्दोपनिषद् की कथा का पारायण करने कराने से, हम ऋषि दयानन्द द्वारा पुनः प्रचारित वैदिकधर्म का सार्वभौम रूप (universal) देख सकते हैं। इन भावार्थों का सरल अंग्रेज़ी अनुवाद विदेशों के सामने भी आर्यसमाज के सार्वभौम रूप को सरलता से रख सकता है। इस उपनिषद् के विविध प्रकरण वर्तमान समय के लिये अपेक्षित सार्वभौम धर्म को स्पष्ट करते हैं। प्रथम प्रकरण में एकेश्वरवाद और पुरुषार्थवाद पर आश्रित भक्तिवाद का निरूपण किया गया है। दूसरे प्रकरण में जीवात्मा के स्वरूप का निरूपण कर उसके स्वतन्त्रकर्ता होने, अजर अमर होने के साथ २ पुनर्जन्म तथा मुक्ति से आने का प्रतिपादन-प्रकृति के दृश्य मान उदाहरणों द्वारा किया गया है। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध स्वरूप निरूपण में स्त्री पुरुष के समान, परस्पराश्रित अधिकारों तथा कर्तव्यों का सूर्य, चन्द्र, उषा आदि के उदाहरणों से निरूपण किया गया है।

अध्यापक विद्यार्थी प्रकरण में, विद्या प्रचार के साधनों का निरूपण करते हुए वर्तमान आर्य समाज की शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधारों के लिये संकेत मिलते हैं। उपदेशकों को अध्यापक और अध्यापकों को उपदेशक होना चाहिए। यह अध्यापन तथा प्रचार कार्य स्त्री पुरुष दोनों को करने चाहिए।

'प्रकृति स्वरूप निरूपण' में शिल्प विद्या की महिमा दिखाकर वर्तमान समय के आर्यों को शिल्प विद्या पढ़ने के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया है, और उनके सामने विमान-तार आदि

वैज्ञानिक ऐश्वर्यों के आदर्श रखे हैं। ऋषि दयानन्द ने इन वैज्ञानिक आविष्कारों का उल्लेख तब किया था जब कि युरोप में भी—इनका नाम मात्र बहुत कम लोगों को ज्ञात था।

ऋषि दयानन्द नें ऋग्वेद भाष्य १८७७ ई० में लिखा। तभी विमान (जहाज) तार पत्रादि का उल्लेख भाष्य में किया। वर्तमान समय के वैज्ञानिक आविष्कारों का आरम्भ १९०३ ई० में प्रारम्भिक दशा में था। The first power-driven man-carrying flight was made on December 17, 1903 by Orvile Wright in a biplane made by himself and his brother Wilbur. The flight lasted no more than 12 seconds and only one hundred and twenty feet were covered.

प्राकृतिक शक्ति से संचालित, मनुष्य को ले जाने वाला हवाई जहाज १९०३ ई० में (ओहियो) अमरीका निवासी औविलराइट ने बनाया था। यह जहाज १२ सैकण्ड तक उड़ा और इस अन्तर में केवल १२० फीट की यात्रा की।

(Marvals of the Modern World by Herold Wheeler.)

"सभा संगठन प्रकरण" में वैदिक प्रजा सत्तावाद तथा शासन तन्त्र का निरूपण कर धर्म स्थापना के लिये हिंसा अहिंसा और सभा समितियों द्वारा राज तन्त्र चलाने का आदेश किया है। ऋषि दयानन्द परम्परागत जन्माभिमानी राजाओं के विरोधी थे।

"मनुष्य कर्तव्य निरूपण" प्रकरण में मनुष्य को इकाई मान कर जीवनचर्या बिताने का आदेश दिया है। हिन्दु

मुसलमान, ईसाई, सिक्ख—अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी भेदभावों के स्थान पर, मनुष्य को इकाई मान कर व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों का निरूपण किया गया है।

इन दिनों काग़ज़ की दुर्लभता के कारण केवल यह प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है। यदि इस उपनिषद् के पारायण से आर्य शिक्षणालयों में, पुस्तकी विद्या के साथ २ शिल्प विद्या और व्यवहारिक विद्या की ओर जनता में प्रवृत्ति पैदा हुई और पाठकों के हृदय में वैदिक आश्रम व्यवस्था के अनुसार क्रमशः आश्रम जीवन व्यतीत करने की इच्छा पैदा हुई और इस प्रकार से आश्रम से आश्रमान्तर में जाने वाले वानप्रस्थियों तथा संन्यासियों की संख्या वृद्धि हुई, तो मैं अपने यत्न को सफल समझूँगा।

इस उपनिषद् में ऋषि दयानन्द द्वारा कृत ऋग्वेद भाष्य के संस्कृत तथा आर्य भाषा में लिखे गये भावार्थों का संकलन किया गया है। प्रत्येक प्रकरण में प्रथम भावार्थ का उल्लेख मन्त्र के साथ किया गयाहै शेष भावार्थों में मन्त्र की प्रतीक लिख दी गई। प्रत्येक पृष्ठ में अङ्कित संस्कृत तथा हिन्दी आर्य भाषा भावार्थों में एक भाव को द्योतित करने वाले भावार्थों की क्रम संख्या एक ही रखी है। संस्कृत भावार्थ ऊपर लिखे गये हैं। उसी पृष्ठ के निचले भाग में आर्य भाषा भावार्थ लिखे गए हैं। संस्कृत भावार्थ का प्रमाण मानकर तदनुसार आर्य भाषा के भावार्थ लिखे गये हैं। कुछेक स्थानों पर आर्य भाषा के भावार्थों की भाषा को सरल किया गया है।

मन्त्र प्रतीक में ऋग्वेद० मं० से मंडल अ० अनुवाक और सू० से सूक्त संख्या और अन्तिम मं० से मंत्र संख्या निर्दिष्ट की गई है।

१६-४-१६४६ भीमसेन विद्यालङ्कार

दयानन्दोपनिषद्

अथवा

दयानन्द-बोध

ईश्वरस्वरूपनिरूपण प्रकरण

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० म.१। अनु१ सू.१।म.१

१—अत्र श्लेषालंकारेणोभयार्थग्रहण मस्तीति बोध्यम् । इतोऽग्रे यत्र यत्र मन्त्र भूमिकाया मुपदिश्यत इति क्रियापदं प्रयुज्यतेऽत्र सर्वत्र कर्तेश्वर एव बोध्यः । कुतः । वेदानां तेनोक्तत्वात् । पितृवत्कृपायमाणईश्वरः सर्वविद्याप्राप्तये सर्वजीवहितार्थं वेदोपदेशं चकार । यथा पिताऽध्यापको वा स्वपुत्रं शिष्यं च प्रतित्वमेवं वदैवं कुरु सत्यं वद पितर माचार्यं च सेवस्वानृतं

१—इस मन्त्र में श्लेषालंकार से दो अर्थों का ग्रहण होता है । पिता के समान कृपा कारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये प्रत्येक कल्प के आदि में वेद का उपदेश करता है कि "तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह" सत्य वचन बोल इत्यादि शिक्षा को सुन कर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा पिता और आचार्य की सेवा करूंगा । झूठ ना कहूंगा । इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य या लड़कों को उपदेश करते हैं वैसे ही "अग्निमीळे" इत्यादि वेद मन्त्रों में भी जानना चाहिए । क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों

माकुर्विंत्युपदिशति, तथैव बोध्यम् । वेदश्च सर्वजीव कल्याणार्थ माविर्भूतः । एवमर्थोऽत्रोत्तमशब्दप्रयोगः । वेदोपदेशस्य परोपकारार्थत्वात् । अत्राग्नि शब्देन, परमार्थव्यवहारविद्या सिद्धये परमेश्वर भौतिकौ द्वावर्थौ गृह्येते । पुरा आर्यैर्याश्वि विद्यानाम्ना शीघ्र गमन हेतुः शिल्प विद्या संपादितेति श्रूयते साग्निविद्यैवासीत् । परमेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्व सर्वप्रकाशकत्वाभ्या मनन्तज्ञान वत्त्वात् । भौतिकस्य रूप दाह प्रकाश वेग छेदनादिगुणवत्त्वाच्छिल्प विद्यायां मुख्यहेतुत्वाच्च प्रथमं ग्रहणं कृतमस्तीति वेदितव्यम् ।

अहं यज्ञस्य पुरोहित मृत्विजं होतारं रत्न धातमं देव मग्निमीळे ।

के उत्तम सुख के लिये प्रगट किया है । इसी 'अग्निमीड़े' वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से, इस मन्त्र में 'ईळे' यह उत्तम पुरुष (मैं स्तुति करता हूं) का प्रयोग भी है । परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लिये अग्नि शब्द द्वारा परमेश्वर और भौतिक अग्नि ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं । पहले समय में आर्य लोगों ने अश्वि विद्या के नाम से शीघ्रगमन का हेतु शिल्प विद्या उत्पन्न की थी । वह अग्नि विद्या की ही उन्नति थी । आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाशक और अनन्त ज्ञानवान आदि हेतुओं से अग्नि शब्द द्वारा परमेश्वर तथा रूप दाह प्रकाश वेग छेदन आदि गुण और शिल्प विद्या के भी मुख्य साधक आदि हेतु होने से प्रथम मन्त्रमें अग्नि शब्द के भौतिक अर्थ का भी ग्रहण किया है ।

हम लोग विद्वानों के सत्कार संगम महिमा और कर्म के (यज्ञस्य) देने तथा ग्रहण करने वाले (पुरोहितं) उत्पत्ति के समय से पहले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (ऋत्विजं)

२—यतोऽयं व्यापकः परमेश्वरः स्वसत्तया पूर्वोक्तं यज्ञं सर्वतः सततं रक्षति। अतएव स यज्ञो दिव्यगुणप्राप्ति हेतुर्भवति। एवमेव परमेश्वरेण यो दिव्यगुणसहितोऽग्निः रचितोऽस्ति तस्मादेवायं शिल्प विद्या संपादकोऽस्ति। यो धार्मिक उद्योगी विद्वान् मनुष्योस्ति स एवैतान् गुणान् प्राप्तुमर्हति। ऋ०म० १।१।१।४।

३—यो न्यायकारी सर्वस्य सुहृत्सन् दयालुः कल्याणकर्ता सर्वस्य सुखमिच्छुः परमेश्वरोस्ति तस्योपासनेन जीव ऐहिक पारमार्थिकं सुखं प्राप्नोति नेतरस्य। कुतः। परमेश्वरस्यैवैतच्छीलवत्त्वेन समर्थत्वात्। योभिव्याप्याङ्गान्यङ्गीव सर्वं विश्वं धारयति। येनैवेदं जगद्रक्षितं यथावदवस्थापितं च सोंगिरा भवतीति।

बारम्बार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचने वाले, तथा ऋतु ऋतु में उपासना करने योग्य (रत्नधातमम्) और निश्चय करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वा (देवं) देने तथा सब पदार्थों के प्रकाश करने वाले परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करते हैं।

२—क्योंकि व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त संसार रूपी यज्ञ कीनिरन्तर रक्षा करता है इसी से वह अच्छे अच्छे गुणों के देने का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्य गुण युक्त अग्नि भी रचा है जो कि उत्तम शिल्प विद्या का उत्पन्न करने वाला है। इन गुणों को केवल धार्मिक उद्योगी और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं।

३—परमेश्वर न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करनेवाला है। उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव

४—हे सर्वद्रष्टः सर्वव्यापिन्नुपासनार्ह वयं सर्वकर्मानुष्ठानेषु प्रतिक्षणं त्वां नैव विस्मरामः । यतस्तस्मादस्माकमधर्म मनुष्ठातु मिच्छा कदाचिन्नैव भवति । कुतः सर्वज्ञः सर्वसाक्षीभवान् सर्वाण्यस्मत् कार्याणि सर्वथा पश्यतीति ज्ञानात् ।

५—परमात्मा स्वसत्ताया मानन्दे च क्षयाज्ञान रहितोऽन्तर्यामिरूपेण सर्वान् जीवान् सत्यमुपदिशन्नाप्तान् संसारं च रक्षन् सदैव वर्तते । एतस्यो पासका वय मप्यानन्दितावृद्धियुक्ता विज्ञानवन्तो भूत्वाऽभ्युदय निः श्रेयसं प्राप्ताः सदैव वर्तामह इति ।

और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं । जैसे शरीरधारी प्राणी अपने शरीर को धारण करता है वैसे ही परमेश्वर सब संसार को धारण करता है और इसी से इस संसार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है । ऋ० म. १। अनु.१। सू. १ । म.६

४—सब को देखने और, सब में व्याप्त होने वाले उपासना के योग्य परमेश्वर ! हम लोग सब कामों को करते हुए एक क्षण भी आप को नहीं भूलते-न भूलें। इसी से हम लोगों की अधर्म करने की कभी इच्छा भी नहीं होती। क्योंकि हम इस प्रकार अनुभव करते हैं कि जो सर्वज्ञ सब का साक्षी परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को देखता है । ऋ० म.१। १ अ. । सू. १ । म. ७ ।

५—विनाश और अज्ञान आदि दोष रहित परमात्मा अपने अन्तर्यामी रूप से सब जीवों को सत्य का उपदेश करता है और श्रेष्ठ विद्वानों और जगत् की रक्षा करता हुआ अपनी सत्ता और परम आनन्द में प्रवृत्त हो रहा है । उस परमेश्वरके हम उपासक भी आनन्दित वृद्धि-युक्त होकर विज्ञान में विहार करते हुए परम आनन्द रूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं । ऋ० मं.१। अ.१। सू. १। मं. ८

६—सर्वैरेवं प्रयत्नः कर्तव्य ईश्वरः प्रार्थनीयश्च। हे भगवन् भवानस्मान् रक्षयित्वा शुभेषुगुणकर्मसु सदैवनियोजय। यथा पिता स्वसन्तानान् सम्यक् पालयित्वा सुशिक्ष्य शुभगुणकर्मयुक्तान् श्रेष्ठकर्म कर्तृंश्च संपादयति तथैव भवानपि स्वकृपयाऽस्मान् निष्पादयत्विति। ऋ० म० १। अ० १। सू० १। म० ६।

७—ईश्वराज्ञायां वर्तमानेन शिल्पविद्यादिकार्यं सिध्यर्थमग्निं साधितवता मनुष्येणाक्षयं धनं प्राप्यते येन नित्यं कीर्तिवृद्धि-र्वीरपुरुषाश्च भवन्ति। म० १। अनु० १। सू० १। म० ३।

८—मनुष्यैर्मूलकारणस्येश्वरस्य संस्कृतया बुद्ध्या विज्ञानतः साक्षात्प्राप्तिः कार्या। नैवं विनाऽयं केनचिन्मनुष्येण प्राप्तुं शक्य इति। म० १। अ० १। सू० ३। मं० ५।

६—सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिये कि हे भगवन्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने के योग्य बना देता है। वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण और शुभ कर्मों में सदा युक्त कीजिये।

७—ईश्वर की आज्ञा में रहने तथा शिल्प विद्या संबन्धि कार्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को अक्षय अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता—धन प्राप्त होता है। और उससे यश वृद्धि और वीर पुरुष पैदा होते हैं।

८—सब मनुष्यों को उचित है कि सब कार्य जगत् की उत्पत्ति करने में मूल आदि कारण परमेश्वर का शुद्ध बुद्धि और विज्ञान से साक्षात् किया करें।

९—यथा ये विश्वस्मिन्पृथिवी सूर्यादयः सृष्टाः पदार्थाः सन्ति ते सर्वे सर्वकर्तारं परमेश्वरं ज्ञापयित्वा तमेव प्रकाशयन्ति। तथैतानुपकारानीश्वरगुणांश्च सम्यग् विदित्वा विद्वांसोऽपीदृश एव कर्मणि प्रवर्तेरन्निति। म० १। अ० १। सू० ५। मं० ८।

१०—वयं यस्य सत्तयेमे पदार्थाः बलवन्तो भूत्वा स्वस्य स्वस्य व्यवहारे वर्तन्ते तेभ्यो बलादिगुणेभ्यो विश्वसुखार्थं पुरुषार्थं कुर्याम। सोऽस्मिन् व्यवहारेऽस्माकं सहायं करोत्विति प्रार्थ्यते।

११—हे जगदीश्वर त्वं त्वोतास स्त्वया रक्षिताः सन्तो वयं येन धनेन मुष्टिहत्ययाऽर्वता निवृत्तान्निश्चितान् शत्रून् निरुणधामहै, तेषां सर्वदा निरोधं करवा महै तदस्मभ्यं देहि।

ऋ० म० १। अनु० ३। सू० ८। म० २।

९—इस विश्व में पृथिवी सूर्य आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रचे हुए जो पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही को प्रसिद्ध करके प्रकट करते हैं; और निर्देश देते हैं कि जिससे न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जान के, विद्वान् भी वैसे ही कर्मों में प्रवृत्त हों।

१०—जिसकी सत्ता से संसार के पदार्थ बलवान् होकर अपने अपने व्यवहारों में वर्तमान हैं उन सब बल आदि गुणों से उपकार लेकर विश्व के नाना प्रकार के सुख भोगने के लिये हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ करें। ईश्वर इस प्रयोजन में हमारा सहाय करे इस लिये हम लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं। ऋ०१। १। ५। मं० ६।

११—हे जगदीश्वर (त्वोतासः) आपके सकाश से रक्षा को प्राप्त हुए हम लोग (येन) जिस पूर्वोक्त धन से (मुष्टि हत्यया) बाहु युद्ध और (अर्वता) अश्व आदि सेना की सामग्री से (निवृत्तान्) निश्चित

ईश्वरेष्टैर्मनुष्यैः शरीरात्मबलैः सर्वसामर्थ्येन श्रेष्ठानां पालनं दुष्टानां निग्रहः सर्वदा कार्यः । यतोमुष्टिप्रहारमसहमानाः शत्रवो विलीयेरन् ।

१२—यथा विविध पुष्पफल वदाम्रपनसादयो वृक्षा विविध फलप्रदाः सन्ति । तथैवेश्वरेण प्रकाशिता विविध विद्यानन्दप्रदावेदा अनेक सुख भोगप्रदाः पृथिव्या दयश्च प्रसिद्धीकृताः सन्ति । एतेषां प्रकाशो राज्यं च विद्वद्भिरेव कर्तुं शक्यते ।

मंत्र ८ । ऋ. १ म० । अ० ३ । सू. ८ ।

१३—यथास्मिन् जगति केनचिन्निर्मितान् पदार्थान् दृष्ट्वा तद्रच-

---

शत्रुओं को (निरुणधाम है) रोकें अर्थात् उनको निर्बल कर सकें ऐसे उत्तम धन का दान हम लोगों के लिये कृपा से कीजिये ।

ईश्वर के सेवक मनुष्यों को उचित है कि अपने शरीर और बुद्धि बल को बहुत बढ़ावें जिससे श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का अपमान सदा होता रहे और जिससे शत्रुजन उनके मुष्टिप्रहार को न सह सकें और इधर उधर छिपते भागते फिरें ।

१२—जैसे विविध प्रकार से फल फूलों से युक्त आम और कटहल आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों के देने हारे होते हैं । वैसे ही ईश्वर द्वारा प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं को देने हारी होकर सब मनुष्यों को परम आनन्द देने वाली है । जो विद्वान् लोग इसको पढ़ के धर्मात्मा होते हैं वे ही वेदों का प्रकाश और पृथिवी में राज्य करने को समर्थ होते हैं ।

१३—जैसे इस संसार में अच्छे २ पदार्थों की रचना विशेष देखकर उस रचने वाले की प्रशंसा होती है वैसे ही संसार के

यितुः प्रशंसा भवति तथैव सर्वैः प्रत्यक्षा प्रत्यक्षैः जगत्स्थैः सूर्यादिभिरुत्तमैः पदार्थैस्तद्रचनया च वेदेष्वीश्वरस्यैव धन्यवादा सन्ति। नैतस्य समाऽधिका वा कस्यचित्स्तुतिर्भवितु मर्हतीति।

मंत्र १०। ऋ० मं० १। अ० ३ सू० ८

१४—यथा सर्वैं मनुष्यैः परमेश्वरस्यैव पूजा कार्या। अर्थात्तदाज्ञायां सदा वर्तितव्यम्। वेद विद्यामप्यधीत्य सम्यग्विदित्वोपदेशेनोत्कृष्टैर्गुणैः सह मनुष्य वंश उद्यमवान् क्रियते तथैव स्वैरपि भवितव्यम्। नेदं फलं परमेश्वरं विहायान्यपूजकः प्राप्तुमर्हति। कुत;। ईश्वरस्याज्ञाऽऽभावेन। तत्सदृशस्यान्य वस्तुनो ह्यविद्यमानत्वात्। तस्मात्तस्यैव गान मर्चनं च कर्तव्यमिति।म०१। ऋ० १।अनु.३।सू.१०

प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अत्युत्तम पदार्थों तथा विशेष रचना को देखकर ईश्वर ही को धन्यवाद दिये जाते हैं। इस कारण से परमेश्वर की स्तुति के समान वा उससे अधिक किसी की स्तुति नहीं हो सकती।

१४—जैसे सब मनुष्यों को परमेश्वर ही की पूजा करनी चाहिए अर्थात् उसकी आज्ञा के अनुकूल वेद-विद्या को पढ़कर अच्छे अच्छे गुणों के साथ अपने और अन्यों के साथ मनुष्य वंश को पुरुषार्थी करते हैं। वैसे ही अपने आप भी परिश्रमी होना चाहिए। और जो परमेश्वर के सिवाय दूसरे का पूजन करने वाला पुरुष है वह कभी उत्तम फल को प्राप्त होने योग्य नहीं हो सकता क्योंकि न तो ईश्वर की ऐसी आज्ञा ही है और न ईश्वर के समान कोई दूसरा पदार्थ है कि, जिसका उसके स्थान में पूजन किया जाय। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर ही का गान और पूजन करें।

१५—अस्मिन् जगति या या शोभा प्रशंसा ये च धन्यवादास्ते सर्वे परमेश्वर मेव प्रकाशयन्ते । कुतः । यत्र यत्र निर्मितेषु पदार्थेषु प्रशंसिता रचनागुणाश्च भवन्ति ते ते निर्मातारं प्रशंसन्ति । तथै-वेश्वरस्यानन्ता प्रशंसा प्रार्थना च पदार्थप्राप्तये क्रियते । परन्तु यद्यदीश्वरात्प्रार्थ्यते तत्तदत्यन्त स्वपुरुषार्थेनैव प्राप्तुमर्हति ।

म० १ । सू० १० । मं० ५ ।

१६–हे परमेश्वर यथा भवता सूर्यादिजगदुत्पाद्य स्वकीर्तिः सर्वं प्राणिभ्यः सुखं च प्रसिद्धी कृतं तथैव भवत्कृपया वयमपि मन आदीनि इन्द्रियाणि शुद्धानि विद्याधर्मप्रकाशयुक्तानि सुखेन संसाध्य स्वकीर्तिं विद्याधनं चक्रवर्तिं राज्यं च सततं प्रकाश्य सर्वान्मनुष्यान् सुखिनः कीर्तिमन्तश्च कारयेमेति ।

म० १ । सू० १० । मन्त्र ७ ।

१५—इस संसार में जो जो शोभायुक्त रचना प्रशंसा और धन्यवाद हैं वे सब परमेश्वर ही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करते हैं । क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों में प्रशंसायुक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थों के रचने वाले की ही प्रशंसा के हेतु हैं; वैसे ही यह पदार्थ परमेश्वर की प्रशंसा जनाने वा प्रार्थना के लिये हैं । इस कारण जो जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं सो सो हमारे अत्यन्त पुरुषार्थ के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य हैं केवल प्रार्थनामात्र से नहीं ।

१६–हे परमेश्वर जैसे आपने सूर्यादि जगत् को उत्पन्न कर के अपना यश और संसार का सब सुख प्रसिद्ध किया है, वैसे ही आप की कृपा से हम लोग भी अपने मन आदि इन्द्रियों को, शुद्धि के साथ विद्या और धर्म के प्रकाश से युक्त तथा सुख पूर्वक सिद्ध करें और अपनी कीर्ति, विद्या धन और चक्रवर्ति राज्य

१७—यदा कश्चित्पृच्छेदीश्वरः कियानस्तीति तत्रेदमुत्तरम् । येन सर्वमाकाशादिकं व्याप्तं नैव तमनन्तं कश्चिदप्यर्थो व्याप्तु मर्हति । अतोऽयमेव सर्वैर्मनुष्यैः सेवनीयः । उत्तमानि कर्माणि कर्तुं वस्तूनि च प्राप्तुं प्रार्थनीयः । यस्य गुणाः कर्माणि चेयत्ता रहितानि सन्ति तस्यान्तं ग्रहीतुं कः समर्थो भवेत् ।

म० १ । सू० १० । मंत्र ८

१८—परमेश्वर स्त्रिविधस्य स्थूल सूक्ष्म कारणाख्यस्य जगतः सकाशात्पृथग्वस्तुत्वाच्चतुर्थो (तुरीयं चतुर्णां स्थूल सूक्ष्म कारण परमकारणानां संख्यापूरकम्) वर्तते । यश्च सकलैर्मनुष्यैः सर्वाभिव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वाधारो नित्यं पूजनीयोस्ति नैतं बिहाय केन चिदन्यस्येश्वरबुद्धचोपासना कार्या । नैवैतस्माद्भिन्नः कश्चित्कर्मानुसारेण जीवेभ्यः फलप्रदातास्ति ।

का प्रकाश करके सब मनुष्यों को निरन्तर आनन्दित और कीर्तिमान् करें ।

१७—जब कोई पूछे कि ईश्वर कितना बड़ा है तो उत्तर यह है कि जिसको सब आकाश आदि बड़े २ पदार्थ भी घेर में नहीं ला सकते, क्योंकि वह अनन्त है । इससे सब मनुष्यों को उचित है कि उसी परमात्मा का सेवन उत्तम उत्तम कर्म करने और श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति के लिये उसी की प्रार्थना करते रहें । जब इसके गुण और कर्मों की गणना कोई नहीं कर सकता तो कोई उसके अन्त पाने को समर्थ कैसे हो सकता है ।

१८—परमेश्वर तीन प्रकार के अर्थात्—स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप जगत् से अलग होने के कारण चौथा है । जो कि सब मनुष्यों को सर्व व्यापी सब का अन्तर्यामी और आधार नित्य पूजन करने योग्य है, इसको छोड़ कर ईश्वर बुद्धि कर के किसी

१६—व्यापकस्येश्वरस्य व्याप्यस्य सर्वस्य जगतश्च द्वयोर्नित्य संबन्धोस्ति। स एव सर्वं जगद्रचयित्वा धृत्वा सर्वेषां बुद्धीनां चेष्टाया विज्ञाता सन् सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः तत्तत्कर्मानुसारेण सुख-दुःखात्मकं फलं प्रददाति । नैव कश्चिदनीश्वरं स्वभावसिद्ध मन-धिष्ठातृकं जगद्भवितु मर्हति । जडानां विज्ञानाभावेन यथायोग्य नियमेनोत्पत्तुमनर्हत्वात् । म० १ । अ० ५ । सू० १८ । मंत्र ७ ।

२०—मनुष्यैर्यश्चिन्मयः सर्वत्रव्यापकः पूज्यतमः प्रीतिविषयः सर्वैश्वर्यप्रदः परमेश्वरोस्ति स एव नित्य मुपास्यः । नैवैतद्विषये-ऽस्मादन्यः कश्चित्पदार्थ उपासितु मर्होस्तीति मन्तव्यम् ।

दूसरे पदार्थ की उपासना न करनी चाहिये । क्योंकि इससे भिन्न कोई कर्म के अनुसार जीवों को फल देने वाला नहीं है ।

१६—व्यापक ईश्वर सब में रहने वाले और व्याप्य जगत् का नित्य संबन्ध है । वही सब संसार को रचकर तथा धारण करके बुद्धि और कर्मों को अच्छी प्रकार जान कर सब प्राणियों के लिये उनके शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुख रूप फल को देता है । ईश्वर को छोड़ कर, अपने आप स्वभाव मात्र से सिद्ध होने वाला अर्थात् जिस का कोई स्वामी न हो ऐसा संसार नहीं हो सकता क्योंकि जड़ पदार्थों के अचेतन होने से यथा योग्य नियम के साथ उत्पन्न होने की योग्यता कभी भी नहीं होती ।

२०—जो चेतनमय सब जगह प्राप्त होने और निरन्तर पूजन करने योग्य प्रीति का एक पुंज और सब ऐश्वर्यों का देने वाला परमेश्वर है वही निरन्तर उपासना के योग्य है । इस विषय में यह समझना चाहिए कि इसके बिना कोई दूसरा पदार्थ उपासना के योग्य नहीं है ।

२१—अयं विष्णुर्जगदीश्वरः पृथिवीमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तैः सप्तभिर्धामभिः सहवर्तमानांल्लोकान् विचक्रमे रचितवानतएतेभ्यो देवा विद्वांसो नोऽस्मानवन्त्वेत द्विद्या मवगमयन्तु । नैवविदुषामुपदेशेन विना कस्यचिन्मनुष्यस्य यथावत्सृष्टिविद्या संभवतीति । नैवेश्वरोत्पादनेन बिना कस्यचिद् द्रव्यस्य स्वतो महत्व परिमाणेन मूर्तिमत्वं जायते नैवैताभ्यांविना मनुष्या उपकारान् ग्रहीतुं शक्नुवन्तीति बोध्यम् । ऋ० म० १ । सू० २२ । मंत्र १६

दयानन्दोपनिषद ऋषि दयानन्द द्वारा साक्षात्कृत मंत्र भावार्थानुसारीश्वरस्वरूपनिरूपण प्रकरणाख्यं प्रथमं प्रकरणम् समाप्तम् ।

२१—जिस सदा वर्तमान नित्य कारण से चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर पृथिवी को लेकर सात अर्थात्—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु विराट् परमाणु और प्रकृति पर्यन्त लोकों को (धामभिः) जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ (विचक्रमे) रचता है (अतः) उसी से विद्वान लोग हम लोगों को (अवन्तु) उक्त लोकों की विद्या को समझाते वा प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते हैं । विद्वानों के उपदेश के विना किसी मनुष्य को यथावत् सृष्टि विद्या का बोध कभी नहीं हो सकता। ईश्वर के उत्पादन करने के विना किसी पदार्थ का साकार होना नहीं बन सकता और इन दोनों कारणों के जाने बिना कोई मनुष्य पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता।

दयानन्दोपनिषद् का ऋषि दयानन्द द्वारा साक्षात्कृत-ऋग्वेदीय मंत्र भावार्थ में प्रतिपादित ईश्वर-स्वरूप निरूपण नाम प्रथम प्रकरण समाप्त

जीव स्वरूप निरूपण प्रकरण

ओ३म् दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः। होतार मग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ऋ० म० १। सू. ५८। मंत्र ६

१—हे अग्ने स्वप्रकाश स्वरूप त्वं यं त्वा भृगवो मानुषेषु जनेभ्यश्चारुंसुहवं रयिं न धनमिव होतारमतिथिं वरेण्यं शेवं लब्ध्वा दिव्याय जन्मने मित्रं न सखायमिव त्वाऽऽदधुस्तमेव जीवं विजानीहि। यथा मनुष्या विद्या श्रियौ मित्राणि च प्राप्य सुख मेधन्ते तथैव जीवस्वरूपस्य वेदितारोऽत्यंतानि सुखानि प्राप्नुवन्ति।

१-हे (अग्ने) अग्नि के सदृश स्वप्रकाश स्वरूप जीव तू जिस (त्वा) तुझको (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् (मानुषेषु) मनुष्यों में (जनेभ्यः) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके (चारुं) सुन्दर स्वरूप (सुहवम्) सुखों के देने हारे (रयिं) धन के (न) समान (होतारं) दानशील (अतिथिं) अनियत स्थिति अर्थात् अतिथि के सदृश देह देहान्तर और स्थान स्थानान्तर से आने जाने वाले (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (शेवम्) सुख रूप जीव को प्राप्त होके (दिव्याय) शुद्ध (जन्मने) जन्म के लिये (मित्रं न) मित्र के सदृश तुझको (आदधुः) सब प्रकारसे धारण करते हैं, उसी को जीव जान।

जैसे मनुष्य विद्या वा लक्ष्मी तथा मित्रों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही जीव के स्वरूप को जानने वाले विद्वान् लोग अत्यन्त सुखों को प्राप्त होते हैं।

२—ईश्वरेणास्मिन् जगति जीवानां सुखायैतेषु पदार्थेषु स्वशक्तेर्यावन्तो दृष्टान्ता यादृशं रचनं यादृशगुणा उपकारार्थ रचिता वर्तन्ते ; तावतः संपूर्णान् वेत्तुं नाहं समर्थोऽस्मि । नैवं कश्चिदीश्वर गुणानां समाप्तिं वेत्तुमर्हति । कुतः । तस्यैतेषामनन्त त्वात् परन्तु मनुष्यै रेतेभ्यः पदार्थेभ्यो यावानुपकारो ग्रहीतुं शक्योऽस्ति तावान् प्रयत्नेन ग्राह्य इति । ऋ० म० १ । सू० ७ । मं० ७

३—अत्र जीवस्य, पुनर्जन्म विधानं विज्ञेयम् । मनुष्यैर्यादृशानि कर्माणि क्रियन्ते तादृशानि जन्मानि भोगाश्च प्राप्यन्ते ।

ऋ० म० १ । सू०२० । मंत्र १।

४—हे मनुष्या यूयं य इन्द्रस्य युज्यः सखास्ति यतो जीवो व्रतानि पस्पशे स्पृशति तस्य विष्णोः कर्माणि पश्यत । यस्मा-

---

२—ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के सुख के लिये इन पदार्थों में अपनी शक्ति से जितने दृष्टान्त वा उनमें जिस प्रकार की रचना और अलग २ उनके गुण तथा उनसे उपकार लेने के लिये रखे हैं उन सब के जानने को मैं अल्प बुद्धि पुरुष होने से समर्थ कभी नहीं हो सकता और न कोई मनुष्य ईश्वर के गुणों की समाप्ति जानने को समर्थ है। क्योंकि जगदीश्वर अनन्त गुण और अनन्त सामर्थ्य वाला है। परन्तु मनुष्य उन पदार्थों से जितना उपकार लेने को समर्थ हो, उतना सब प्रकार से लेना चाहिए।

३-इस संसार में जीव के पुनर्जन्म का विधान निश्चित जानना चाहिए। मनुष्य जैसे कर्म किया करते हैं वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं।

४—हे मनुष्य लोगो तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः)

त्सर्वमित्रेण जगदीश्वरेण जीवानां पृथिव्यादीनि साधनानि शरीराणि रचितानि तस्मादेव सर्वे प्राणिनः स्वानि स्वानि कर्माणि कर्तुं शक्नुवन्तीति। ऋ० म० १। सू० २२। मंत्र १६।

५—यथा प्राणिनः सूर्यप्रकाशे शुद्धेन चक्षुषा मूर्त्तद्रव्याणि पश्यन्ति तथैव विद्वांसो विमलेन ज्ञानेन विद्या सुविचार युक्ते शुद्धे स्वात्मनि जगदीश्वरस्य सर्वानन्द युक्तं प्राप्तुं मर्हं मोक्षाख्यं पदं दृष्ट्वा (सुखं) प्राप्नुवन्ति। नैतत्प्राप्त्या विना कश्चित्सर्वाणि सुखानि प्राप्तु मर्हति तस्मादेतत्प्राप्तौ सर्वैः (सर्वदा) प्रयत्नोऽनुविधेय इति। म० १ सू० २२। मन्त्र २०।

अर्थात् जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करने वाले दिशा काल और आकाश हैं उनमें व्यापक होके रमने (सखा) सर्व सुखों के संपादन करने से मित्र है (यतः) जिस से जीव (व्रतानि) सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (पस्पशे) प्राप्त होता है उस (विष्णोः) सर्वत्र व्यापक शुद्ध और स्वभाव सिद्ध अनन्त सामर्थ वाले परमेश्वर के (कर्माणि) जो जगत् की रचना पालना न्याय और प्रयत्न करना आदि कर्म हैं उन को तुम लोग (पश्यत) अच्छे प्रकार विदित करो।

जिस कारण सब के मित्र जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवों के साधन सहित शरीर रचे हैं। इसी से सब प्राणी अपने २ कार्यों के करने में समर्थ होते हैं।

५–जैसे प्राणी सूर्य के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचार युक्त शुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सब आनन्दों

६—ये मनुष्या अविद्याऽधर्माचरणाख्यां निद्रां त्यक्त्वा विद्या धर्माचरणे जागृताः सन्ति त एव सच्चिदानन्दस्वरूपं सर्वोत्तमं सर्वैं प्राप्तुमर्हं नैरन्तर्येण सर्वव्यापिनं विष्णुं जगदीश्वरं प्राप्नुवन्ति।

म० १ । अ० ५ । सू० २२ । मं० २१

७—सर्वान् प्राणिनः पूर्वाचरित फलं वायु जलाग्न्यादि द्वारा-स्मिन् जन्मनि पुनर्जन्मनि वा प्राप्नोत्येवेति ।

ऋ०म० १ । सू०२३ । मंत्र २३

८—यदा जीवः पूर्वशरीरं त्यक्त्वोत्तरं प्राप्नोति तदा तेन सह यः स्वाभाविको मानसोऽग्निः गच्छति स एव पुनः शरीरादिकं प्रकाशयति जीवानां यत्पापं पुण्यं च जन्म कारणमस्ति तद्दपि

से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देखकर (सुख को) प्राप्त होते हैं। इसकी प्राप्ति के बिना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता इससे इसकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्यों को निरन्तर यत्न करना चाहिये ।

६—जो मनुष्य अविद्या और अधर्माचरण रूप नींद को छोड़ कर विद्या और धर्माचरण में जाग रहे हैं वे ही सच्चिदानन्द स्वरूप सब प्रकार से उत्तम, सब को प्राप्त होने योग्य, निरन्तर सर्व-व्यापी विष्णु अर्थात् जगदीश्वर को प्राप्त होते हैं ।

७—सब प्राणियों को पिछले जन्म में किये हुए पुण्य वा पाप का फल वायु, जल और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता है ।

८—जब जीव पिछले शरीर को छोड़ कर अगले शरीर को प्राप्त होता है तब उसके साथ जो स्वाभाविक मानसिक अग्नि जाता है वही फिर शरीर आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है जो

सहिता विद्वांसो जानन्ति नेतरे। परमेश्वर स्तु खलु यथार्थतया सर्वं विदित्वा स्वस्व कर्मानुसारेण जीवान् शरीरसंयुक्तान् कृत्वा फलं भोजयतीति। म० १। सू० २३-२४ मं०

६—ईश्वरेण या अग्न्याख्यात् कारणात्तिस्रो दीप्तय: सूर्याग्नि विद्युदाख्या रचिता: संति तद् द्वारा सर्वाणि कार्याणि सिद्धयन्ति। यदा ये जीवा: शरीराणि त्यक्त्वा यस्य यमस्य स्थानं गच्छन्ति स को स्तीति पृच्छयते। अत्रोत्तरमन्तरिक्षस्थं वायुं यमाख्यं गच्छन्तीति ब्रूयात्। यथा युद्धे रथस्थ भृत्यादीन्यंगानि उपतिष्ठन्ति; तथैव मृता जीविताश्च जीवा: वायु माश्रित्यतिष्ठन्ति। पृथिवी चन्द्रतारकादयो लोका: सूर्य प्रकाशमुपाश्रित्य वर्तन्ते। यो विद्वान् स एव प्रश्नोत्तराणि वदेन्नेतरो मूढ़:। नैव मनुष्यै रविद्वत्कथने विश्वसितव्यं न किलाप्तशब्देऽश्रद्धातव्यं चेति।

ऋ. म. १। सू. ३५। म. ६।

जीवों के पाप पुण्य और जन्म का कारण है उसको वे ऋषि विद्वान् ही जानते हैं अन्य लोग नहीं। किन्तु परमेश्वर तो निश्चय के साथ यथा योग्य जीवों के पाप वा पुण्य को जान कर उनके कर्म के अनुसार शरीर देकर सुख दुख का भोग कराता ही है।

६—इस ईश्वर ने अग्नि रूप कारण से सूर्य, अग्नि और बिजली रूप तीन प्रकार की दीप्तियां रची हैं। इनके द्वारा सब कार्य सिद्ध होते हैं। जब कोई ऐसा पूछे कि जीव अपने शरीरों को छोड़ के किस यम के स्थान को प्राप्त होते हैं तब ऐसा कहे। जैसे युद्ध में रथ भृत्य आदि सेना के अंगों में स्थित होते हैं वैसे मरे और जीते हुए जीव वायु के अवलम्ब से स्थित होते हैं। जो विद्वान् हो वही प्रश्नों के उत्तर दे सकता है, मूर्ख नहीं। इसलिये मनुष्यों को मूर्ख अर्थात् अनाप्तों के कहने में विश्वास और विद्वानों

१०—हे मनुष्या यूय मनादौ सच्चिदानन्द स्वरूपे सर्वशक्तिमतिस्वप्रकाशे सर्वाधारेऽखिलविश्वोत्पादके देशकाल वायुपरिच्छेद शून्ये सर्वाभिव्यापके परमेश्वरे नित्येन व्याप्य व्यापक सम्बन्धेन योऽनादिर्नित्यश्चेतनो ऽल्पोऽल्पज्ञोऽस्ति स एव जीवो वर्तते इति बोध्यम्। म० १। सू० ५८। मंत्र १

११—यः पूर्णेनेश्वरेण धृत आकाशादिषु प्रयतते सर्वान् बुद्ध्यादीन् प्रकाशते। ईश्वर नियोगेन स्व कृतस्य शुभाशुभाचरितस्य कर्मणः सुख दुःखात्मकं फलं भुंक्ते सोऽत्र शरीरे स्वतन्त्रकर्ता भोक्ता जीवोऽस्तीति मनुष्यैर्वेदितव्यम्।

ऋ० म० १। सू० ५८। मंत्र २।

१२—ये पृथिव्यां प्राणैश्चेष्टन्ते मनोऽनुकूलेन रथेनेव शरी-

के कथन में अश्रद्धा-अविश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

१०—हे मनुष्य लोगो तुम अनादि अर्थात् उत्पत्ति रहित सत्य स्वरूप ज्ञान मय आनन्द स्वरूप सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सब को धारण, और सबके उत्पादक देश काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि नित्य चेतन अल्प एक देशस्थ और अल्पज्ञ है, वही जीव है ऐसा निश्चित जानो।

११—जो पूर्ण ईश्वर ने धारण किया, आकाशादि तत्वों में प्रयत्न कर्ता सब बुद्धि आदि का प्रकाशक ईश्वर के न्याय नियम से अपने किये शुभाशुभ कर्म के सुख दुख रूप फल को भोगता है वही इस शरीर में स्वतन्त्र कर्ता भोक्ता जीव है; ऐसा सब मनुष्य जानें।

१२—जो पृथिवी में प्राणों के साथ चेष्टा, मन के अनुकूल

रेण सह रमन्ते, श्रेष्ठानि वस्तूनि सुखंचेच्छन्ति त एव जीवा इति वेद्यम्। ऋ० म० १। सू० ५८। मंत्र ३

१३—हे रूशदूर्मेऽजराग्ने जीव यो भवानतसेषु वितिष्ठते यद्वोवातजूतो जुहूभिः सृण्या च सह वनिनः प्राप्य त्वं वृथाऽभिमानं परित्यज्य स्वात्मानं जानीहि। सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वरोऽभिवदति मया यदुपदिष्टं तदेव युष्मदात्मस्वरूप मस्तीति वेदितव्यम्। म० १। सू० ५८। मंत्र ४।

१४—हे मनुष्या यस्य सप्त जुह्वस्तं होतारं यजिष्ठं विश्वेषां

रथ के समान, शरीर के साथ क्रीड़ा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं, वे ही जीव हैं ऐसा सब लोग जानें।

१३—हे (रूशदूर्मे) (रुशन्त्य ऊर्मयो ज्वाला यस्यतत्सम्बुद्धौ) अपने स्वभाव की लहरी युक्त (अजर) वृद्धावस्था से रहित (अग्ने) बिजली के तुल्य वर्तमान जीव जो तू (अतसेषु) आकाशादि व्यापक पदार्थों में (वितिष्ठते) ठहरता है (यत्) जो (वात जूतः) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला (तुविष्वणिः) बहुत पदार्थों का सेवक (जुहूभिः) ग्रहण करने के साधन रूप क्रियाओं और (सृण्या) धारण तथा हनन रूप कर्म के साथ वर्तमान (वनिनः) विद्युत् युक्त प्राणों को प्राप्त होके (तृषु) शीघ्र (वृषायसे) बलवान् होता है जिससे (ते) तेरे (कृष्णम्) कर्षण रूप गुण को हम लोग (एम) प्राप्त होते हैं सो तू (वृथा) वृथा अभिमान को छोड़ के अपने स्वरूप को जान।

सब मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है कि जैसा मैंने जीव के स्वभाव का उपदेश किया है, वही तुम्हारा स्वरूप है यह निश्चित जानो।

वसूनां मरतिं यं बाघतः प्रयसाऽग्निमिवाध्वरेषु वृणते संभजन्ते तं रत्नमहं यामिसमर्पयामि च । ये मनुष्याः स्वात्मानं विदित्वा परं ब्रह्म विजानन्ति । त एव मोक्षमधिगच्छन्ति । ऋ० म० १।सू०५८।मंत्र७ ।

१५—अत्र प्रश्नः कोऽस्तीदृशः सनातनाना मविनाशिना मर्थोऽस्ति यस्यात्युत्कृष्टं नाम्नः स्मरेम जानीयाम कश्चास्मिन् संसारेऽस्मभ्यं केन हेतुना मोक्षसुख भोगानन्तरं जन्मान्तरं संपादयति कथं च वयमानन्दप्रदां मुक्तिं प्राप्य पुनर्मातापित्रोः सकाशात्पुनर्जन्मनि शरीरं धारयेमेति । ऋ० म० १ । सू० २४ । मंत्र १ ।

१४—हे मनुष्यो ! जिसके (सप्त) सात (जुह्वः) सुख की इच्छा के साधन हैं । उस (होतारं) सुखों के दाता (यजिष्ठं) अतिशय संगति में नियुक्त (विश्वेषाम्) सब (वसूनाम्) पृथिव्यादि लोकों को (अरतिं) प्राप्त होने हारा (यम्) जिसको (बाघतः) बुद्धिमान् लोग (प्रयसा) प्रीति से (अध्वरेषु) अहिंसनीय गुणों में (अग्निम्) अग्नि के सदृश (वृणते) स्वीकार करते हैं । उस (रत्नम्) रमणीयानन्द स्वरूप वाले जीव को मैं (यामि) प्राप्त होता और (समर्पयामि) सेवा करता हूं ।

जो मनुष्य अपने आत्मा को जान के परब्रह्म को जानते हैं; वे ही मोक्ष पाते हैं ।

१५—कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है, कि जिसका अत्यन्त उत्कर्षयुक्त नाम का स्मरण करें या जानें । और कौन देव हम लोगों के लिये किस किस हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का संपादन करता और अमृत वा आनन्द के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी, फिर हम लोगों को माता पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है ।

१६—हे मनुष्या वयं यमनादि ममृतं सर्वेषा मस्माकं पाप पुण्यानुसारेण फल व्यवस्थापकं जगदीश्वरं देवं निश्चिनुमः । यस्य न्याय व्यवस्थया पुनर्जन्मानि प्राप्नुमो यूयमप्येत मेव देवं पुनर्जन्म दातारं विजानीत । न चैतस्मादन्यः कश्चिदर्थ एतत्कर्म कर्तुं शक्नोति । अयमेव मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पाप पुण्य तुल्य तथा पितरि मातरि च मनुष्य जन्म कारयतीति च । म०१। सू० २४। मंत्र २

१७—यथेश्वरः सर्वत्राभिव्याप्तः सर्वशक्तिमान् सन् सृष्टि रचनादीन्याश्चर्य रूपाणि कृत्वा वसूनि विधाय जीवानां त्रिकाल स्थानि कर्माणि च विदित्वैतेभ्यस्तत्कर्माश्रितं फलं दातु मर्हति । एवं यो विद्वान् मनुष्यो भूतपूर्वाणां विदुषां कर्माणि विदित्वा-

---

१६—हे मनुष्यो हम लोग जिस अनादि स्वरूप सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप पुण्यों के अनुसार यथा योग्य सुख दुख फल देने वाले जगदीश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं । तुम लोग भी उसी देव को जानो किन्तु इससे पृथक् अन्य और कोई उक्त कर्म करने वाला नहीं है। ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वही मोक्ष पदवी को पहुँचे हुए जीवों को भी महा कल्प के अन्त में फिर पाप पुण्य की तुल्यता से पिता माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्य जन्म धारण कराता है ।

१७—जिस प्रकार ईश्वर सब जगह व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से सृष्टि रचनादि रूपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जान कर इनको उन उन कर्मों के अनुसार फल देने के योग्य है। इसी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहिले हो गए उनके कर्मों और [illegible] करने योग्य कर्मों के

ऽनुष्ठातव्यानि कर्माण्येव कर्तुं मुद्युंक्ते स एव सर्वाभिद्रष्टा सन् सर्वोपकारकाण्यऽनुत्तमानि कर्माणि कृत्वा सर्वेषां न्यायं कर्तुं शक्नोतीति। म० १। सू० २५। मंत्र ११

१८—मनुष्यैरेवं निश्चेतव्यं यथा गावः स्वस्ववेगानुसारेण धावन्त्योऽभीष्टं स्थानं गत्वा परिश्रान्ता भवन्ति तथैव मनुष्याः स्वस्व बुद्धि बलानुसारेण परमेश्वरस्य सूर्यादेर्वा गुणानन्विष्य यथा बुद्धि विदित्वा परिश्रान्ता भवन्ति नैव कस्यापि जनस्य बुद्धि शरीरवेगोऽपरिमितो भवितु मर्हति। यथा पक्षिणः स्वस्व बलानुसारेणाकाशंगच्छन्तो नैतस्यान्तं कश्चिदपि प्राप्नोति। तथैव कश्चिदपि मनुष्यो विद्याविषयस्यान्तं गन्तुं नार्हति। ऋ० म. १।सू.२५।मंत्र ६

१६—हे अग्ने जगदीश्वर सक्त्तरस्त्वं पुरूरवसे सुकृते मनवे

करने में युक्त होता है वही सब को देखता हुआ सबके उपकार करने वाले उत्तम से उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने को योग्य होता है।

१८—मनुष्यों को ऐसा निश्चय करना चाहिए कि जैसे गौ आदि पशु अपने अपने वेग के अनुसार दौड़ते हुए,चाहे हुए अभीष्ट स्थान को पहुँच कर थक जाते हैं। वैसे ही मनुष्य अपनी अपनी बुद्धि बल के अनुसार परमेश्वर वायु और सूर्य आदि पदार्थों के गुणों को जान कर थक जाते हैं। किसी मनुष्य का बुद्धि वा शरीर का वेग ऐसा नहीं हो सकता कि जिसका अन्त न हो सके। जैसे पक्षी अपने अपने बल के अनुसार आकाश को जाता हुआ आकाश का पार कोई भी नहीं पाता इसी प्रकार कोई मनुष्य विद्या विषय के अन्त को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता।

१६—हे जगदीश्वर अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले, स्वप्रकाशक आप जिसके बहुत से उत्तम उत्तम विद्यायुक्त वचन हैं और अच्छे

द्यामवाशयः श्वात्रेण सह वर्तमानं त्वां विद्वांसः पूर्वं पुनरपरं चानयन् प्राप्नुवन्ति। हे जीव ये त्वां श्वात्रेण सह वर्तमानं पूर्वमपरं च देहं विज्ञापयन्ति यद्यतः समंताद् दुःखान्मुक्तो भवसि यस्य च नियमेन त्वं पित्रोः सकाशान्मुहुः कल्पान्ते पुनरागच्छसि तस्य सेवनं ज्ञानं च कुरु। म० १। सू०३१। मंत्र ४

२०—ये ज्ञानिनो धर्मात्मानो मनुष्या मोक्ष पदं प्राप्नुवन्ति तदानीं तेषा माधार ईश्वर एवास्ति। यज्जन्मातीतं तत्प्रथमं, यच्चा-

---

अच्छे कामों को करने वाला है। उस ज्ञानवान् विद्वान् के लिए उत्तम सूर्य लोक को प्रकाशित किये हुए हैं। विद्वान् लोग (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्तमान (पूर्वम्) पूर्व कल्प वा पूर्व जन्म में प्राप्त होने योग्य और (अपरम्) इसके आगे जन्म मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आप को (पुनः) बार बार (अनयन्) प्राप्त होते हैं। हे जीव तू जिस परमेश्वर को वेद और विद्वान् लोग उपदेश से प्रतीत करते हैं। जो तुझे (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्तमान (पूर्वम्) पिछले (अपरम्) अगले देह को प्राप्त करता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में (पित्रोः) माता और पिता से तू (पर्यामुच्यसे) सब प्रकार के दुख से छूट जाता है तथा जिसके नियम से मुक्ति से महाकल्प के अन्त में फिर संसार में आता है, उसका विज्ञान वा सेवन तू अच्छी प्रकार कर।

२०—जो ज्ञानी धर्मात्मा मनुष्य मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं उनका उस समय ईश्वर ही आधार है। जो जन्म हो गया वह पहिला, और जो आगामी भविष्य में होगा वह दूसरा, जो है वह

गामितद्द्वितीयं यद्वर्तते तत्तृतीयं यच्च विद्याचार्याभ्यां जायते तच्चतुर्थम्। एतच्चतुष्टयं मिलित्वैकं जन्म। यत्र मुक्तिं प्राप्य मुक्त्वा पुनर्जायते तद्द्वितीयं जन्मैतदुभयस्य धारणाय सर्वे जीवाः प्रवर्तन्ते इतीयं व्यवस्थेश्वरा धीनास्तीति। म० १। सू० ३१। मत्र ७।

दयानन्दोपनिषदो दयानन्द साक्षात्कृत ऋग्वेदीय मंत्र भावार्थानुसारि जीवस्वरूपनिरूपणाख्यं प्रकरणम् समाप्तम्।

तीसरा, और जो विद्या या आचार्य से होता है वह चौथा जन्म है। ये चार जन्म मिल के एक जन्म कहाता है, और जो मोक्ष पद से छूट कर संसार की प्राप्ति होती है वह दूसरा जन्म है। इन दोनों जन्मों के धारण करने के लिये सब जीव प्रवृत्त हो रहे हैं। यह भी व्यवस्था ईश्वर के अधीन है।

दयानन्द उपनिषद् का जीवस्वरूप निरूपण प्रकरण समाप्त।

"गीता में, स्त्रियों को पापयोनि" भी कहा गया है। पौराणिक सम्प्रदाय के लोग शंकराचार्य भी स्त्री को पापयोनि तथा वेदाध्ययन अधिकार से वंचित मानते हैं। ईसाई मुसलमान स्त्री को आत्महीन अथवा भोग्य मानते हैं। परन्तु वेदमत में स्त्री पुरुष का, आत्मा की दृष्टि से समान स्थान है। प्रचलित मिथ्या भ्रम को दूर करने के लिये जीवस्वरूप निरूपण प्रकरण के अनन्तर स्त्री पुरुष सम्बन्ध स्वरूप निरूपण प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है।

—सम्पादक

स्त्री पुरुष स्वरूप सम्बन्ध निरूपण प्रकरण

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथोव्युच्छादुत्तरा अनुद्यून् जरामृता चरति स्वधाभिः ॥

१—हे स्त्रि यथोषा कारण प्रवाह रूपत्वेन नित्या सतीत्रिषु कालेषु प्रकाश्यान् पदार्थान् प्रकाश्य वर्तते तथाऽऽत्मत्वेन नित्य स्वरूपा त्वं त्रिकालस्थान् सद्-व्यवहारान् विद्यासुशिक्षाभ्यां दीपयित्वा सौभाग्यवती भूत्वा सदा सुखिनी भवसि ।

२—यथोषाः काष्ठासु व्याप्तास्ति तथा कन्या विद्यासु व्याप्नुयुः यथेय मुषाः स्वकान्तिभिः सुशोभना रमणीयेन स्वरूपेण प्रकाशते तथैताः स्वशीलादिभिः सुन्दरेण रूपेण शुम्भेयुः थेयमयुषा

१—हे स्त्रि जैसे प्रभात वेला, कारण और प्रवाह रूप से नित्य हुई, तीनों कालों में प्रकाश करने योग्य पदार्थों का प्रकाश करके वर्तमान रहती है, वैसे आत्मपन से नित्य स्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्य व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र पौत्र ऐश्वर्यादि सौभाग्य युक्त होके सदा सुखी हो । [स्त्री भी पुरुष की भांति आत्मा से युक्त है स्त्री पुरुष दोनों बराबर आत्मा वाले हैं ।] ऋ० मण्डल १ । अ० १६ । सू० ११३ । मं०१३

२—जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्यालोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कांतियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है

अन्धकार निवारण प्रकाशं जनयति तथैता मौर्ख्यं निवार्य सुसभ्यतादि गुणैः प्रकाशन्ताम् । ऋ. मं. १ । सू. ११३ । मं. १४ ।

३—ये मनुष्या उषसः प्राक् शयना दुत्थायावश्यकं कृत्वा परमेश्वरंध्यायन्ति ते धीमन्तो धार्मिका जायन्ते । ये स्त्री पुरुषा जगदीश्वरं ध्यात्वा प्रीत्या संवदन्ते तेऽनेक विधानि सुखानि प्राप्नुवन्ति ।

४—यथोषास्तमो निवार्य प्रकाशं प्रादुर्भाव्य धार्मिकान् सुखयित्वा चोरादीन् पीडयित्वा सर्वान् प्राणिन आह्लादयति तथैवं विद्याधर्म प्रकाशवत्यः शमादि गुणान्विता विदुष्यस्सत्स्त्रियः स्वपतिभ्योऽपत्यानि कृत्वा सुशिक्षया विद्यान्धकारं निवार्य विद्यार्कं प्रापय्य कुलं सुभूषयेयुः । ऋ. म. १ । सू. ११३ । मं १२ ।

वैसे यह कन्या जन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों । जैसे यह उषा अंधकार का निवारण कर रूपप्रकाश को उत्पन्न कर रही है वैसे ये कन्याजन मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि गुणों से सदा प्रकाशित रहें ।

३—जो मनुष्य उषा के पहले शयन से उठ आवश्यक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं । जो स्त्री पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते चालते हैं वे अनेक सुखों को प्राप्त होते हैं ।

ऋ. म. १ । सू. ११३ । मं. ११ ।

४—जैसे प्रभातवेला अन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रादुर्भाव, धार्मिकों को सुखी और चोरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है वैसे ही विद्या धर्म प्रकाशवती शमादि गुणों से युक्त विदुषी उत्तम स्त्रियां अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके अच्छी शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्या रूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें ।

५—यथा वैश्या धर्मं धृत्वा धनमर्जयन्ति तथैव कन्या विवाहात्प्राक् सुब्रह्मचर्येणाप्ता विदुष्योऽध्यापिकाः प्राप्य पूर्णां सुशिक्षां विद्यां चादायाथ विवाहं कृत्वा प्रजासुखं स्वार्जयेयुः। नहि विद्याध्ययनस्य समयो विवाहादर्वागस्ति, न खलु कस्यचित्पुरुषस्य स्त्रिया वा विद्याग्रहणेऽनधिकारोस्ति। म. १। सू. ७१। मं० ३।

६—न खलु विद्या ग्रहणेन विना स्त्रीणां किंचिदपि सुखं भवति यथाऽगृहीतविद्याः पुरुषाः; सुलक्षणाः विदुषीः (स्त्रीः) पीडयन्ति, तथैव विद्या शिक्षा रहिताः स्त्रियः स्वान् पतीन् पीडयन्ति तस्माद् विद्या ग्रहणानन्तर मेव परस्परं प्रीत्या स्वयंवर विधानेन विवाहं कृत्वा सततं सुखयितव्यम्। ऋ. म० १। सू. ७१। मं. ४

५—जिस प्रकार वैश्य लोग धर्म धारण करके धनोपार्जन करते हैं, उसी प्रकार कन्याओं को चाहिए कि विवाह से पहले शुभ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विदुषी अध्यापिकाएं बनें सुशिक्षा और विद्या का संचय करके विवाह करें और प्रजा प्राप्ति का सुख उपार्जन करें। विद्याध्ययन का समय विवाह के पीछे नहीं है। हरेक स्त्री पुरुष को विद्याग्रहण करने का अधिकार है।

६—विद्या ग्रहण किये बिना स्त्रियों को किसी प्रकार का सुख नहीं हो सकता। जिस प्रकार विद्यारहित पुरुष, सुलक्षण वाली विदुषी स्त्रियों को पीड़ा देते हैं, उसी प्रकार से विद्या शिक्षा रहित स्त्रियें पतियों को दुःख देती हैं। इसलिये विद्याग्रहण करने के पीछे ही, परस्पर प्रीतिपूर्वक स्वयंवर विधि से विवाह करके सतत सुखी होना चाहिये।

७—याः कन्याः यावच्चतुर्विंशति वर्षमायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियतया सांगोपांग वेदविद्या अधीयते ताः मनुष्य जाति भूषिका भवन्ति। ऋ० म०१ सू० १। मंत्र ५

८—सुखं जिगमिषुभिः पुरुषैः स्त्रीभिश्च धर्मसेवितेन ब्रह्मचर्येण पूर्णां विद्यां युवावस्थां च प्राप्य स्वतुल्यतयैव विवाहः कर्तव्यो ऽथवा ब्रह्मचर्य एव स्थित्वा सर्वदा स्त्री पुरुषाणां सुशिक्षा कार्या नहि तुल्य गुण कर्म स्वभावै विना गृहाश्रमं धृत्वा केचित् किंचिदपि सुखं वा संतानं प्राप्तुं शक्नुन्त्यत एवमेव विवाहः कर्तव्यः।

म० १। सूत्र ११२। मंत्र १९

७—जो कन्या लोग चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन और जितेन्द्रिय होकर छः अंग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष। उपांग अर्थात् मीमांसा वैशेषिक, न्याय, योग, और वेदान्त तथा आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक विद्या आदि को पढ़ती हैं वे सब संसारस्थ मनुष्य जाति की शोभा करने वाली होती हैं।

८—सुख पाने की इच्छा करने वाले पुरुष और स्त्रियों को धर्म से सेवित ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त होकर अपने तुल्य से ही विवाह करना योग्य है। अथवा ब्रह्मचर्य ही में ठहर कर, सर्वदा स्त्री पुरुषों को अच्छी शिक्षा करना योग्य है क्योंकि तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों के बिना गृहाश्रम को धारण करके कोई किंचित् भी सुख वा उत्तम संतान को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते; इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिए।

९—यदाकृत-ब्रह्मचर्येण विदुषा साधुना यूनास्वतुल्या कृतब्रह्म-चर्या सुरूपवीर्या साध्वी सुखप्रदा पूर्णयुवति विंशति वर्षादारभ्य चतुर्विंशति वार्षिकी कन्याऽभ्युदुह्ये तदैवोषर्वत् सुप्रकाशितौ भूत्वा विवाहितौ स्त्री पुरुषौ सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाताम्।

: म. १ । सू० ११३ । मंत्र० ७ ।

१०—सौभाग्य मिच्छन्त्य: स्त्रिय: उषर्वदतीतानागत वर्तमानानां साध्वीनां पतिव्रतानां शाश्वतं धर्म माश्रित्य स्व स्व पतीन् सुखयन्त्य: सुशोभमाना: सन्तानान्युत्पाद्य परिपाल्य विद्या सुशिक्षां बोधयन्त्य: सततमानन्दयेयु: । ऋ. म. १ । सू. ११३ । मंत्र ८ ।

११—यथा सूर्यस्य संबन्धिन्युषा सर्वै: प्राणिभि: संगत्य

९—जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ ज्वान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी सुन्दर रूप बल पराक्रम वाली साध्वी अच्छे स्वभाव युक्त सुख देने हारी युवती अर्थात् बीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित्त सभी स्त्री पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें ।

१०—सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्रीजन उषा के तुल्य भूत भविष्यत् वर्तमान समयों में हुई उत्तम शील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभा वाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें ।

११—जैसे सूर्य की संबन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे

सर्वाज्जीवान् सुखयति तथा साध्व्यो विदुष्यः स्त्रियः पतीन् प्रीणयन्त्यः सत्यः प्रशस्तान्यपत्यानि जनयितुं शक्नुवन्ति नेतरा कुमार्यः। ऋ. म. १ सू. ११३। मं. ६।

१२—कियत्समयोषा भवतीति प्रश्नः सूर्योदयात्प्राग्यावान् पञ्च घटिका समय इत्युत्तरम्। काः स्त्रियः सुखमाप्नुवन्तीतिया अन्याभिर्विदुषीभिः पतिभिश्च सह सततं संगच्छेयु स्ताः प्रशंसनीयाश्च स्युः। याः करुणां विदधति ताः पतीन् प्रीणयन्ति याः पत्यनुकूलाः वर्तन्ते ताः सदाऽऽनन्दिता भवन्ति।

ऋ. म० १। सू. ११३। मंत्र १०।

१३—हे स्त्री पुरुषौ! स्वयंवर विधानेन विवाहं कृत्वा परस्परौ प्रीतिमन्तौ भूत्वा सततमानन्देतम्। मनुष्यै र्यथा सर्वदा चक्र-

---

सज्जन विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने को समर्थ होती है इतर दुष्ट भार्या वैसा काम नहीं कर सकतीं।

१२—(प्रश्न) कितने समय तक उषा काल होता है? (उत्तर) सूर्योदय से पूर्व पाँच घड़ी उषा काल होता है। (प्रश्न) कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है? (उत्तर) जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के सदा अनुकूल रहती हैं और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं जो कृपालु होती हैं वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं जो पतियों के अनुकूल वर्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं।

१३—हे स्त्री पुरुषो! स्वयंवर विधि से विवाह करके परस्पर प्रीति प्रेम पूर्वक रहते हुए निरन्तर आनन्द प्राप्त करो। जिस प्रकार रात और दिन सर्वदा चक्र की तरह गति परिवर्तन से

वत्परिवर्तमाने रात्रिदिने परस्परं संयुक्ते वर्तेते तथा विवाहितौ स्त्री पुरुषौ संप्रीत्या सर्वदा वर्तेयाताम्। ऋ. म. १। सू. ६२। मं. ८।

१४—यथा पतयः स्व स्त्रीः भगिनी भ्रातृन् विद्यार्थिन आचार्यांश्च सेवित्वा सुखानि विद्याश्च प्राप्नुवन्ति। तथा धर्मारूढा धार्मिका विद्वान्सः स्त्रीपुरुषाः गृहे वसन्तोऽपि मुक्तिमाप्नुवन्ति।

ऋ. म. १। सू. ६२। १०।

१५—यथा स्त्री पुरुषयोः सह वर्तमानेनापत्यान्युत्पद्यन्ते तथैव रात्रिंदिवयोः सह वर्तमानेन सर्वे व्यवहारा जायन्ते। यथा च सूर्य प्रकाशः भूमिच्छायाभ्यां विनैतयो रुत्पत्तिर्भवितुं न शक्या तथा दंपतीभ्यां विना मैथुन सृष्ट्युत्पत्ति रसंभवा। ऋ.म.१।अ.११।६२।११

युक्त परस्पर संयुक्त होते हुए रहते हैं उसी प्रकार विवाहित स्त्री पुरुष प्रीति प्रेम पूर्वक सदा व्यवहार करें।

१४—जिस प्रकार पति स्त्री की, बहन भाई की, विद्यार्थी आचार्य की सेवा करके सुख और विद्या प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी, स्त्री पुरुष धर्ममार्ग पर चलते हुए धार्मिक विद्वान् होकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

१५—मनुष्यों को समझना चाहिये कि जैसे स्त्री पुरुषों के साथ (परस्पर) (वर्तमान होने से) रहने से संतानों की उत्पत्ति होती है वैसे ही रात दिन के एक साथ रहने से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं। सूर्य प्रकाश और भूमि की छाया के बिना दिन रात संभव नहीं होते, वैसे ही स्त्री पुरुष के बिना मैथुनी सृष्टि नहीं हो सकती।

१६—सर्वैर्माता पित्रादिभिः मनुष्यैः स्व स्व संतानेषु विद्या स्थापनीया । यथा प्रकाशमयः सन् सूर्यःसर्वंप्रकाश्यानन्दयति तथैव विद्यायुक्ताः पुत्राः कन्याश्च सर्वाणि सुखानि ददति ।

म. १ । सू. ७१ । मंत्र ५

१७—येषां ब्रह्मचारिणां ब्रह्मचारिण्यः स्त्रियः स्युस्ते सुखंकथं न लभेरन् । ऋ. म० १ । सू० ७६ । मं. २ ।

१८—हे मनुष्या यूयं निश्चितं जानीत यथोषसमारभ्य कर्माण्युत्पद्यन्ते तथा स्त्रिय आरभ्य गृहकृत्यानि जायन्ते ।

म. १ । सू. ११३ । मं. १५

१६—प्रातःकालीनोषा सर्वान् प्राणिनो जागरयति । अंधकारं च निवर्तयति । यथेयं सायंकालस्था सर्वान् कार्येभ्यो निवर्त्य

१६—सब माता पिता आदि मनुष्यों को अपने २ संतानों में विद्या स्थापन करना चाहिए । जिस प्रकार प्रकाशमय सूर्य सबको प्रकाशित कर आनन्दित करता है उसी प्रकार से विद्यायुक्त पुत्र और कन्यायें माता पिता को सब प्रकार के सुख देते हैं ।

१७—जिन विद्वान् ब्रह्मचारियों की विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री हों वे पूर्ण सुख को क्यों न प्राप्त हों ।

१८—हे मनुष्यो तुम लोग यह निश्चित जानो कि जैसे प्रातः काल से आरम्भ करके कर्म उत्पन्न होते हैं वैसे स्त्रियों के आरम्भ से घर के कर्म हुआ करते हैं । (गृहिणी गृह मुच्यते स्त्री ही घर है । (संकलनकर्ता)

१६—जैसे यह प्रातःकाल की उषा सब प्राणियों को जगाती अंधकार को निवृत्त करती है और जैसे सायंकाल की उषा सबको कार्यों से निवृत करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब

स्थापयति मातृवत् सर्वान् संपाल्य व्यवहारयति तथैव सती विदुषी स्त्री भवति । ऋ. म. १ । सू. ११३ । मं. १६ ।

२०—यथा दम्पती सौहार्देन परस्परं विद्या सुशिक्षाः संगृह्य प्रशस्तान्यन्न धनादीनि वस्तूनि संचित्य सूर्यवद्धर्म न्यायं प्रकाश्य सुखे निवसत स्तदैव गृहाश्रमस्य पूर्णं सुखं प्राप्नुतः ।

म. १ । सू. ११३ । मंत्र. १७

२१—ब्रह्मचारिणां योग्य मस्ति समावर्तनान्तरं स्वसदृशी-विद्या सुशीलतारूपलावण्यसंपन्ना हृद्याः प्रभातवेला इव प्रशंसायुक्ता ब्रह्मचारिणी रुद्वाह्य गृहाश्रमे सुख मलं कुर्य्युः ।

मं. १ । सू. ११३ । मंत्र १८॥

२२—सत्पुरुषेण सत्येव स्त्री विवोढव्या । यतः सुसन्ताना ऐश्वर्यं च नित्यं वर्धेत । भार्या सम्बन्ध जन्य दुःखेन तुल्यमिह

जीवों को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है ।

२०—जब स्त्री पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न धनादि वस्तुओं का संचय करके सूर्य के समान धर्मन्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं तभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ।

२१—ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्तन के पश्चात अपने सदृश विद्या, उत्तम शीलता, रूप और सुन्दरता से संपन्न हृदय को प्रिय, प्रभातवेला के समान प्रशंसित ब्रह्मचारिणी कन्याओं से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख प्राप्त करें ।

२२—सत्पुरुष को योग्य है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे जिससे अच्छी सन्तानें हों और ऐश्वर्य बढ़ा करें ।

किञ्चिदपि महत् कष्टं न विद्यते। तस्मात् पुरुषेण सुलक्षणाया स्त्रिया परीक्षां कृत्वा पाणिग्रहणं ; स्त्रिया च हृद्यस्य प्रशंसित रूप-गुणयुक्तस्य पुरुषस्यैव ग्रहणं कार्यम् । म. १ । सू. ११३ । मंत्र १६

२३—श्रेष्ठा विदुष्यः स्त्रिय एव संतानानुत्पाद्य संरक्ष्य सुशिक्षया वर्धयितुं शक्नुवन्ति । ये पुरुषाः स्त्रीः सत्कुर्वन्ति याः स्त्रियः पुरुषांश्च तेषां कुले सर्वाणि सुखानि वसन्ति दुःखानि च पलायन्ते । म० १ । सू. ११३ । मंत्र २०

२४—मातृ पित्रादीना मतीव योग्य मस्ति यदा स्वापत्यानि पूर्णं सुशिक्षा विद्या शरीरात्मबल रूपलावण्यशीलारोग्य धर्मेश्वर विज्ञानादिभिः शुभैर्गुणैः सह वर्तमानानि स्युस्तदा स्वेच्छां परीक्षाभ्यां स्वयंवर विधानेनाभिरूपौ तुल्यगुण कर्मस्वभावौ

क्योंकि स्त्री सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दुख के तुल्य इस संसार में कोई भी बड़ा कष्ट नहीं है । इससे पुरुष सुलक्षण स्त्री की परीक्षा करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि अतीव हृदय के प्रिय प्रशंसित रूप गुण वाले पुरुष ही का पाणि ग्रहण करे ।

२३—श्रेष्ठ विद्वान् ही सन्तानों को उत्पन्न, अच्छे प्रकार रक्षित और उनको अच्छी शिक्षा कर के उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं । जो पुरुष स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुख भाग जाते हैं ।

२४—माता पिता आदि को अतीव योग्य है कि जब अपने सन्तान पूर्ण अच्छी लिखावट, विद्या, शरीर और आत्मा के बल, रूप लावण्य, स्वभाव, आरोग्यपन, धर्म और ईश्वर को जानने आदि उत्तम गुणों के साथ बर्ताव रखने को समर्थ हों । तब

पूर्णयुवावस्थौ बलिष्ठौ कुमारौ विवाहं कृत्वर्तुगामिनौभूत्वा धर्मेण वर्तित्वा प्रजाः सूत्पादयेता मित्युपदेष्टव्यानि नह्येतेन विना कदाचित् कुलोत्कर्षो भवितुं योग्योऽस्ति इति तस्मात सज्जनैरेवमेव सदा विधेयम्। म० १। सू० ११७। मंत्र १३।

२५—स्त्री पुरुषौ पूर्वैराप्तैः कृतानि कर्माण्यनुष्ठाय धर्मयुक्तेन ब्रह्मचर्येण पूर्णां विद्या अवाप्य क्रिया कौशलेन विमानादि मानानि संपाद्य भूगोलस्याभितो विहृत्यनित्यमानन्देताम्।

ऋ. म. १ सू. ११७। मं. १४

२६—राजपुरुषाः यूयं यथा सर्वमित्रस्य सुलक्षणां हृद्यां ब्रह्मचारिणीं विदुषीं सुशीलां सततं सुख प्रदां धार्मिकीं कुमारीं

अपनी इच्छा और परीक्षा के साथ आप ही स्वयंवर विधि से दोनों सुन्दर समान गुण कर्म स्वभाव युक्त पूरे ज्वान, बली लड़की लड़के विवाह कर ऋतु समय में साथ का संयोग करने वाले होकर धर्म के साथ अपना बर्ताव वर्त कर प्रजा अर्थात अच्छी संतानों को उत्पन्न करें। ऐसे उपदेश देने चाहिए। बिना इसके कभी कुल की उन्नति होने के योग्य नहीं है। इससे सज्जन पुरुषों को ऐसा ही सदा करना चाहिए।

२५—स्त्री पुरुष अगले महात्मा ऋषि महर्षियों ने जो काम किये हैं उनका आचरण कर धर्मयुक्तब्रह्मचर्य से शीघ्र पूर्ण विद्याओं को पाकर क्रिया की कुशलता से विमान आदि यानों को बना कर भूगोल के सब ओर विहार कर नित्य आनन्दयुक्त हों।

२६—हे राजपुरुषो तुम जैसे सबके मित्र की सुलक्षणा मन लगती ब्रह्मचारिणी पंडिता अच्छे शील स्वभाव की निरन्तर सुख देने वाली धर्मशील कुमारी को भार्या करने के लिये

भार्यात्वायोद्‌ढ्वा संरत्तथ तथैव सामादिभी राजकर्मभिर्भूमि राज्यं प्राप्य धर्मेण सदापालयत। ऋ० म० १ । सू० ११७ । मंत्र २०

२७—हे स्त्री पुरुषा यथाकाशे स्व पत्ताभ्या मुड्डीयमाना गृध्रादय: पत्तिण: सुखेन गच्छन्त्या गच्छन्ति तथैव यूयं सुसाधितैं विंमानादिभिर्यानैरन्तरित्ते गच्छतागच्छत । म० १।सू० ११८ । मंत्र ४

२८—यथा ब्रह्मचर्यं कृत्वा प्राप्तयौवनावस्था विदुषी कुमारी स्वप्रियं पतिं प्राप्य सततं सेवते यथा च कृतब्रह्मचर्यो युवा स्वाभीष्टां स्त्रियं प्राप्यानन्दति तथैव सभासेनापती सदा भवेताम् । म० १ । सू० ११६ । मंत्र ५ ।

२६—हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ यथा शीतेनोष्णता हन्यते तथाऽऽविद्यां विद्यया हतं यत आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैवि-

---

स्वीकार कर उसकी रत्ता करते हो । वैसे ही साम, दान, दण्ड, भेद, अर्थात् शांति किसी प्रकार का दबाव देना, दण्ड और एक से दूसरे को तोड़ फोड़ कर उसको बेमन करना आदि राज-कार्यों से भूमि के राज्य को पाकर धर्म से सदैव उसकी रत्ता करो ।

२७—हे स्त्री पुरुषो जैसे आकाश में अपने पंखों से उड़ते हुए गृध्र आदि पखेरू सुख से आते जाते हैं वैसे ही तुम अच्छे सिद्ध किये विमान आदि यानों से अन्तरित्त में आओ जाओ ।

२८—जैसे ब्रह्मचर्य करके यौवनावस्था को पाए हुए विदुषी कुमारी कन्या अपने प्यारे पति को पाय निरन्तर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें ।

२६—हे विवाह किये हुए स्त्री पुरुषो ! जैसे शीत से गरमी मारी जाती है, वैसे अविद्या को विद्या से मारो जिससे आध्या-

कानि दुःखानि नश्येयुः । यथा धार्मिक राजपुरुषा श्चोरादीन निवार्य शयानान प्रजाजनान् रक्षन्ति यथा च सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं जगत् संपोष्य जीवनप्रदौस्तस्तथाऽस्मिञ्च जगति प्रवर्तेथाम् ।

३०—मननशीलाः स्त्रीपुरुषा जन्मारभ्य यावद् ब्रह्मचर्येण सकला विद्या गृह्णीयु स्तावत्सन्तानान् सुशिक्ष्य यथा योग्येषु व्यवहारेषु सततं नियोजयेयुः। म० १। सू० ११६। मंत्र ७।

३१—सर्वे मनुष्याः पूर्णविद्यमाप्तं रागद्वेषपक्षपातरहितं सर्वेषा मुपरि कृपां कुर्वन्तं सर्वथा सत्ययुक्तमसत्यत्यागिनं जितेन्द्रियं प्राप्त योग सिद्धान्तं परावरज्ञं जीवन्मुक्तं संन्यासाश्रमे स्थित मुपदेशाय नित्यं भ्रमन्तं वेदविदं जनं प्राप्य धर्मार्थ

त्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन प्रकार के दुःख नष्ट हों। जैसे धार्मिक राजपुरुष चोर आदि को दूर कर सोते हुए प्रजा जनों की रक्षा करते हैं और जैसे सूर्य चन्द्रमा सब जगत् को पुष्टि देकर जीवन के आनन्द को देने वाले हैं वैसे इस जगत् में प्रवृत्त होओ। म० १। सू० ११६। मंत्र ६।

३०—विचार करने वाले स्त्री पुरुष जन्म से लेकर जब तक ब्रह्मचर्य से समस्त विद्या ग्रहण करें तब तक उत्तम शिक्षा देकर सन्तानों को यथा योग्य व्यवहारों में निरन्तर युक्त करें।

३१—विद्या जानने और शास्त्र सिद्धान्त में रमने वाले राग द्वेष और पक्षपात रहित सबके ऊपर कृपा करते सर्वथा सत्ययुक्त हो, असत्य को छोड़े, इन्द्रियों को जीते और योग के सिद्धान्त को पाए हुए अगले पिछले व्यवहार को जानने वाले, जीवन्मुक्त संन्यासी के आश्रम में स्थित संसार में उपदेश करने के लिये नित्य भ्रमते हुए वेद विद्या के जानने वाले सन्यासी जन को

काम मोक्षाणां सविधानाः सिद्धीः प्राप्नुवन्तु न खल्वीदृशानां संगोपदेश श्रवणाभ्यां विना कश्चिदपि यथार्थबोधमाप्तुं शक्नोति।
म० १। सू० ११६। मंत्र ८

३२—हे अध्यापकोपदेशकौ भवन्तावाप्तवत्सर्वस्य कल्याणाय नित्यं प्रवर्त्तेताम्। एवं विदुषी स्त्र्यपि सर्वे जना विद्याधर्म सुशीलतादि युक्ताः सन्तः सततं शोभेरन्। नैव कोऽपि विद्वान विदुष्या स्त्रिया सह विवाहं कुर्यात्, न कापि खलु मूर्खेण सह विदुषी च, किंतु मूर्खो मूर्खया विद्वान् विदुष्या च सह सम्बन्धं कुर्यात्। म० १। सू० १२०। मंत्र ५।

३३—हे स्त्रीपुरुषाः यथा आप्ताः सर्वान् मनुष्यादीन् सत्यं बोधयन्तोऽसत्यान्निवारयन्तः सुशिक्षन्ते तथा स्वापत्यादीन् भवन्तः सततं सुशिक्षन्ताम्। यतो युस्माकं कुले अयोग्याः सन्तानाः कदाचिन्न जायेरन्। म० सू० १२१। मं १

पाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों की सिद्धियों को विधान के साथ पायें। ऐसे संन्यासी आदि उत्तम विद्वान् के संग और उपदेश के सुने बिना कोई भी मनुष्य यथार्थ बोध को नहीं पा सकता।

३२—हे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो आप उत्तम शास्त्र जानने हारे, श्रेष्ठ सज्जन के समान सब के सुख के लिये नित्य प्रस्तुत रहो। ऐसे विदुषी स्त्री भी हो। सब मनुष्य विद्या धर्म और अच्छे शीलयुक्त होते हुए निरन्तर शोभायुक्त हों। कोई विद्वान मूर्ख स्त्री के साथ विवाह न करे। और न कोई पढ़ी स्त्री मूर्ख के साथ विवाह करे। किन्तु मूर्ख मूर्खा से और विद्वान् मनुष्य विदुषी स्त्री से सम्बन्ध करे।

३३—हे स्त्री पुरुषो जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् सब मनुष्यादि

३४—मनुष्यैरीश्वराराधनेन सम्यगग्नि प्रयोगेण च रससारादीन् रचयित्वोपकृत्य गृहाश्रमे सर्वाणि कार्याणि निर्वतयितव्यानीति। ऋ. म. १। सू. १४। मं० ७

३५—यादृश विद्या गुण स्वभावाः पुरुषास्तेषां तादृशीभिः स्त्री भिरेवभवितव्यम्। यतस्तुल्य विद्यागुणस्वभावानां संबन्धे सुखं भवति नेतरेषाम्। तस्मात्स्वसदृशैः सह स्त्रियः स्वसदृशीभिः स्त्रीभिः सह पुरुषाश्च स्वयंवर विधानेन विवाहं कृत्वा सर्वाणि गृहकार्याणि निष्पाद्य सदानन्दितव्यमिति। ऋ.म. १. सू. २२. मं ११

३६—एतस्मिन् व्यवहारे (इन्द्राणीम्) इन्द्रस्य सूर्यस्य वायो र्वा शक्तिं सामर्थ्यमिव वर्तमानाम् (उपह्वये) उपयोगे स्वी कुर्वे।

को सत्य बोध कराते और झूठ से रोकते हुए उत्तम शिक्षा देते हैं वैसे अपने सन्तान आदि को आप निरन्तर अच्छी शिक्षा देओ जिससे तुम्हारे कुल में अयोग्य सन्तान कभी न उत्पन्न हों।

३४—मनुष्यों को अच्छी प्रकार ईश्वर के आराधन और अग्नि की क्रिया कुशलता से रस सारादि को रच कर तथा उपकार में लाकर गृहस्थ आश्रम में सब कार्यों को सिद्ध करना चाहिये।

३५—जैसी विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हों उन की स्त्री भी वैसी ही होनी ठीक है। क्योंकि जैसा तुल्य रूप विद्या गुण कर्म स्वभाव वालों को सुख का संभव होता है वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता। इससे स्त्री अपने समान पुरुष व पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब कर्मों को सिद्ध करें।

३६—हे मनुष्य लोगों जैसे हम लोग (इह) इस व्यवहार में (स्वस्तये) अविनाशी प्रशंसनीय सुख वा (सोमपीतये) ऐश्वर्यों का

(वरुणानीं) यथावरुणस्य जलस्येयं शान्ति माधुर्यादि गुणयुक्ता शक्तिस्तथाभूताम् (स्वस्तये) अविनष्टायाभिपूजितायसुखाय (अग्नायीं) यथाग्नेरियं ज्वालास्तितादृशीम् (सोमपीतये) सोमाना मैश्वर्याणां पीतिर्भोगो यस्मिन् तस्मै । ऋ.म. १ । सू. २२ । मं १२ ।

मनुष्यै रीश्वर रचितानां पदार्थानां सकाशादविनश्वर सुख-प्राप्तयेऽत्युत्तमाः स्त्रियः (इन्द्राणी अग्नायी वरुणानी) प्राप्तव्याः । नित्य मुद्योगेनान्योऽन्यं प्रीतिविवाहं कुर्युः । नैव सदृशास्त्रीः पुरुषार्थं चान्तरा कस्यचित्किंचिदपि यथावत्सुखं संभवति ।

३७—स्वस्वपुत्रान् न्यूनान्न्यूनं पंचविंशति वर्ष मितेनाऽधिकादधिकेन चत्वारिंशत् वर्ष मितेनैवं न्यूनान्यूनेन षोडषवर्षेणाधिकाधिकेन चतुर्विंशतिवर्षमितेन च ब्रह्मचर्येण स्व स्व कन्याश्च पूर्ण विद्याः सुशिक्षिताश्च संपाद्य स्वयंवराख्य विधानेनैतैर्विवाहः कर्तव्यो यतः सर्वे सदा सुखिनः स्युः । ऋ. म. १ । सू. ४५. । मंत्र १

जिनमें योग होता है उस कर्म के लिये जैसा (इन्द्राणीं) सूर्य, (वरुणानीं) वायु वा जल और (अग्नायी) अग्नि की शक्ति हैं वैसी स्त्रियों को पुरुष और पुरुषों को स्त्री लोग (उपह्वये) उपयोग के लिये स्वीकार करें, वैसे तुम भी ग्रहण करो ।

मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर के बनाए हुए पदार्थों के आश्रय से अविनाशी निरंतर सुख की प्राप्ति के लिये उद्योग करके परस्पर प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें क्योंकि तुल्य स्त्री पुरुष और पुरुषार्थ के बिना किसी मनुष्य को कुछ भी ठीक ठीक सुख का संभव नहीं हो सकता ।

३७—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुत्रों को कम से कम चौबीस और अधिक से अधिक अड़तालीस वर्ष तक, और कन्याओं को कम से कम सोलह और अधिक से अधिक चौबीस वर्ष पर्यन्त

३८—याः स्त्रियः सूर्य चन्द्रोषर्वत्सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति ता एवानन्दाप्ता भवन्ति नेतराः। ऋ. म. १। सू. ४६। मं. १

३९—यतो यदुत्पद्यते तत्तस्या पत्यवद्भवति। यथाकश्चित्स्वामि भृत्यः स्वामिनं प्रबोध्य सचेतनं कृत्वा व्यवहारेषु प्रयोजयति यथोषाश्च पुरुषार्थयुक्तान् प्राणिनः कृत्वा महता पदार्थ समूहेन सुखेन वा सार्द्ध योजयित्वाऽनन्दितान् कृत्वा सायंकालस्थैषा व्यवहारेभ्यो निवर्त्यारामस्थान् करोति तथा मातृ पितृभ्यां विद्यासुशिक्षादि व्यवहारेषु स्व कन्याः प्रेरितव्याः। ऋ. म. १। सू. ४८ मं. १

४०—हे उष रिवस्त्रित्व मश्ववतीर्गोमती र्विश्व सुविदः सूनृता वाचो वस्तवे भूर्यदीरय ये व्यवहारेभ्यश्च्यवन्ते तेषां मघोनां

ब्रह्मचर्य करावें जिससे संपूर्ण विद्या और सुशिक्षा को पाकर वे परस्पर परीक्षा और अति प्रीति से विवाह करें जिससे सब सुखी रहें।

३८—जो स्त्री लोग सूर्य चन्द्र और उषा के सदृश सब प्राणियों को सुख देती हैं वे आनन्द को प्राप्त होती हैं इन से विपरीत कभी नहीं हो सकतीं।

३९—जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारों में प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला प्राणियों को पुरुषार्थ युक्त कर बड़े २ पदार्थ समूहयुक्त सुख से आनन्दित कर सायंकाल में सब व्यवहारों से निवृत्त कर आराम करती है वैसे ही माता पिता विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारों में अपनी कन्याओं को प्रेरणा करें।

४०—हे उषा के सदृश स्त्री तू जैसे यह शुभ गुण युक्त उषा है वैसे (अश्वावतीः) प्रशंसनीय व्याप्ति युक्त (गोमतीः) बहुत

सकाशा द्राधश्चोद प्रेरयताभिर्मा प्रत्यानन्दय। यथा सुशुम्भमानोषा सर्वान्प्राणिनः सुखयति तथा स्त्रियः पत्यादीन् सततं सुखयेयुः।

ऋ. म. १। सू. ४८। मं. २

४१—यथोषा निर्मला सर्वथा सुखप्रदा योगाभ्यासनिमित्ता भवति तथैव स्त्रीभिर्भवितव्यम्। ऋ. म. १। सू. ४८। मं. ५।

४२—यथा पतिव्रताः स्त्रियो नियमेन स्वपतीन् सेवन्ते यथो ष सः पदार्थानां च दूरदेशात्संयोगो जायते तथैव दूरस्थैः कन्या वरैर्विवाहः कर्तव्यो यतो दूरदेशेऽपि प्रीतिर्वर्द्धत। यथा समीप

गो आदि पशु सहित (विश्व सुविदः) सब वस्तुओं को अच्छी प्रकार जानने वाली (सूनृताः) अच्छे प्रकार द्रव्यादियुक्त व्यक्तियों को (वस्तवे) सुख में निवास करने के लिये (भूरि) बहुत (उदीरय) प्रेरणा कर और जो व्यवहारों से (च्यवन्ते) निवृत्त होते हैं उनको (मघोनाम्) धनवानों के सकाश से (राधः) उत्तम से उत्तम धन को (चोद) प्रेरणा कर उनसे (मा) मुझे (प्रति) आनन्दित कर।

जैसे अच्छी शोभित उषा सब प्राणियों को सुख देती है वैसे स्त्रियाँ अपने पतियों को निरन्तर सुख दिया करें।

४१—जैसे प्रातःकाल की वेला सब प्रकार से सुख की देने वाली योगाभ्यास का कारण है, उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिए।

साधारण जनता स्त्री को योगाभ्यास में बाधक मानती है। परन्तु ऋषि उन्हें बाधक नहीं मानते हैं। (संपादक)

४२—जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ नियम से अपने पतियों की सेवा करती हैं। जैसा उषा से सब पदार्थों का दूरदेश से संयोग होता है वैसे दूरस्थ कन्या पुत्रों का युवावस्था में स्वयम्बर विवाह करना

स्थानां विवाहः क्लेशकारी भवति तथैव दूरस्थानां च सुखदायी जायते। ऋ. म. १। सू. ४८। मं. ७।

४३—हे मनुष्या यथा सूर्य उषसं प्राप्य दिनं कृत्वा सर्वान्प्राणिनः सुखयति तथा स्वाः स्त्रियो भूषयेयुस्तान् दारा अप्यलंकुर्युरेवं परस्परं सुप्रीत्युपकाराभ्यां सदा सुखिनः स्युः। ऋ. म. १। सू. ४८। मं ११

४४—हे स्त्रियो यूयं यथा मघोनी सूनरी दिवो दुहितेवोषा विश्वं जगच्चक्षसे ज्योतिः कृणोति स्रिधोऽपद्वेषोऽपोच्छ दूरतो विवासयति तथापत्यादिषु वर्तध्वम्। हे मनुष्या यथा सूर्य उषसं प्राप्यदिनं कृत्वा सर्वानप्राणिनः सुखयति। यथा सत्स्त्री विघ्नान्निवार्य क्रियमाणानि कार्याणिसाध्नोति तथैवोषा दस्युचोरशत्र्वादीन्निवार्य कार्यसाधिका भवति। म० १। सू० ४८। मंत्र ८

चाहिए जिससे दूरदेश में रहने वाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े जैसे निकटस्थों का विवाह दुखःदायक होता है वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है।

४३—जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को प्रकट कर सबको सुख देता है वैसे पुरुष अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं उनको स्त्रीजन भी भूषित करती हैं। इस प्रकार परस्पर प्रीति उपकार से सदा सुखी रहें।

४४—हे स्त्री जनो तुम जैसे (मघोनी) प्रशंसनीय धन का निमित्त (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त कराने वालीं (दिवः) प्रकाशमान सूर्य की (दुहिता) पुत्री के सदृश (उषाः) प्रकाशने वाली प्रभात कीं वेला (विश्वम) सब जगत् को (चक्षसे) देखने के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है और (स्रिधः) हिंसक (द्वेषः) द्वेष करने वाले शत्रुओं को

४५—यथा सुकन्या मातृ पति कुले उज्ज्वलयति तथोषा उभे स्थूल सूक्ष्म वस्तुनी प्रकाशयति । म० १ । सू० ४८ । मन्त्र ६ ।

४६—मनुष्यैर्येऽधीत वेदाः, पूर्वे येऽधीयते तेऽर्वाचीना ऋषयोवेद्या यथा विद्वांसो यान् पदार्थान् विदित्वोपकुर्वन्ति तथैवा न्यैरपि कर्तव्यम् । नैव केनापि मूर्खाणा मनुकरणं कार्यम् । यथा विद्वांसः स्व विद्यया पदार्थ गुणान्प्रकाश्य विद्योपकारौ जनयेयुः । यथेयमुषा सर्वान् पदार्थान् संद्योत्यसुखानि जनयति तथाऽखिल विद्याः स्त्रियो विश्वमलं कुर्वन्तु ।

म० १ । सू० ४८ । मंत्र १४

(अपोच्छत्) दूरवास कराती है । वैसे पति आदि में वर्तो ।

जैसे सती स्त्री विघ्नों को दूर कर कर्तव्य कर्मों को सिद्ध करती है वैसे ही उषा डाकू चोर शत्रु आदि को दूर कर कार्य की सिद्धि कराने वाली होती है ।

४५—जैसे विदुषी धार्मिक कन्या दोनों माता और पति के कुलों को उज्ज्वल करती है वैसे उषा दोनों स्थूल सूक्ष्म अर्थात् बड़ी छोटी वस्तुओं को प्रकाशित करती हैं ।

४६—मनुष्यों को योग्य है कि जो वेदों को पढ़ते हों उनको नवीन ऋषि जानें और जैसे विद्वान् लोग जिन पदार्थों को जान कर उपकार लेते हों वैसे अन्य पुरुषों को भी करना चाहिए, किसी मनुष्य को मूर्खों के चाल चलन पर न चलना चाहिए और जो विद्वान् लोग अपनी विद्या से पदार्थों के गुणों को प्रकाश कर उपकार करते हैं जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विद्वान् स्त्रियां विश्व को सुभूषित कर देती हैं ।

४७—विदुषां शिक्षयोषर्गुण ज्ञानेन सहितैर्मनुष्यैर्भूत्वाऽनेन पुरुषार्थसिद्धैः सर्वाणिसुखनिमित्तानि वस्तूनि जायन्ते तथा मातृशिक्षयैवापत्यान्युत्तमानि भवन्ति नान्यथा।

म० १। सू० ४८। मंत्र १६

४८—मनुष्यैर्यथा प्रकाशेन सुरूप प्रसिद्धिर्जायते तथा सौभाग्यकारिकया विदुष्या स्त्रिया गृहकृत्यसिद्धिरपत्योत्पत्तिश्च जायत इति विज्ञायोपकर्तव्यम्। म० १। सू० ४६। मंत्र २

४६—यथोषा (अर्जुनि—अर्जयन्ति प्रतियतन्ते ययोषसा सा) मुहूर्त प्रहरदिनमासर्त्वयन संवत्सरान् विभजन्ती सर्वेषां प्राणिनां व्यवहार चेतने च विभजति तथा स्त्री सर्वाणि गृहकृत्यानि विभजेत्। म० १। सू० ४६। मंत्र ३

५०—धार्मिका जना यथाश्वा रथं किरणाश्च सूर्यं वहन्त्येवं

४७—जैसे विद्वानों की विद्या शिक्षा से उषा के गुण का ज्ञान होके उससे पुरुषार्थ सिद्धि फिर उससे सब सुखों की निमित्त विद्या प्राप्त होती है। वैसे ही माता की शिक्षा से ही पुत्र उत्तम होते हैं; और प्रकार से नहीं।

४८—मनुष्य लोग जैसे सूर्य के प्रकाश से सुरूप की सिद्धि होती है वैसे ही विदुषी स्त्री से घर का काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है, ऐसा जान कर उनसे उपकार लेवें।

४६—जैसे उषा मुहूर्त प्रहर, दिन, मास, ऋतु अयन अर्थात दक्षिणायन उत्तरायण और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के व्यवहार और चेतनता को करती है, वैसे ही स्त्री सब गृह कृत्यों को पृथक् करें।

५०—धार्मिक माता पिता आदि विद्वान् लोग जैसे घोड़े रथ

विद्या धर्म प्रकाशयुक्ताः स्वसदृशाः स्त्रियः सर्वान्पुरुषा नुद्वाहयेयुः
म० १ । सू० ५० । मंत्र १

५१—यथा रात्रौ नक्षत्राणि चन्द्रेण प्राणाश्च शरीरेण सह वर्तन्ते तथा विवाहित स्त्री पुरुषौ वर्तेयाताम् । म०१। सू०५०। मंत्र२

५२—यथा अस्य सूर्यस्य भ्राजन्तोऽग्नयः केतवो रश्मयो जनाननु भ्राजन्तः सन्ति तथाहं स्वस्त्रियं स्वपुरुषं चैव गम्यत्वेन व्यद्दश्रं नान्यथेति यावत् । यथा प्रदीप्ता अग्नयः सूर्यादयो बहिः सर्वेषु प्रकाशन्ते तथैवान्तरात्मनीश्वरस्य प्रकाशो वर्तते । एतद्विज्ञानाय सर्वेषां मनुष्याणां प्रयत्नः कर्तुं योऽग्योऽस्ति तदाज्ञया पर स्त्री पुरुषैः सह व्यभिचारं सर्वथा विहाय विवाहिताः स्वस्व स्त्री पुरुषाः ऋतु गामिन एवस्युः । म० १ । सू० ५० । मंत्र ३

को और किरणें सूर्य को प्राप्त कराती हैं ऐसे ही विद्या और धर्म के प्रकाशयुक्त अपने तुल्य स्त्रियों से सब पुरुषों का विवाह करावें।

५१—जैसे रात्रि के साथ नक्षत्र लोक चन्द्रमा और प्राण शरीर के साथ वर्तते हैं जैसे विवाह करके स्त्री और पुरुष आपस में वर्ता करें।

५२—जैसे (अस्य) इस सविता की (भ्राजन्तः) प्रकाश मान (अग्नयः) प्रज्वलित (केतवः) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों को (अनु) अनुकूलता से प्रकाशित करती हैं वैसे मैं अपनी विवाहित स्त्री और स्त्री अपने पति को ही समागम के योग्य समझती है अन्य को नहीं।

जैसे प्रज्वलित हुए अग्नि और सूर्यादिक बाहर सब में प्रकाशमान हैं वैसे ही अन्तरात्मा में ईश्वर का प्रकाश वर्तमान है। इसके जानने के लिये सब मनुष्यों को यत्न करना योग्य है, उस परमात्मा की आज्ञा से, पर स्त्री के साथ पुरुष और पर पुरुष के

५३—सर्वैर्बालकैः कन्याभिश्च यथा विधि सेवितेन ब्रह्मचर्येण खिला विद्या अधीत्यपूर्णयुवावस्थायां तुल्य गुणकर्मस्वभावान्परीक्ष्या ऽन्योन्यमति प्रेमोद्भवानन्तरं विवाहं कृत्वा पुनर्यदि पूर्णविद्या स्तर्हि बालकान् अध्यापयेयुः। क्षत्रियवैश्यशूद्रवर्ण योग्या श्चेत्तर्हि स्वस्ववर्णोचितानि कर्माणि कुर्युः। म० १। सू० ५६ मंत्र २

५४—स विवाह उत्तमतमो यत्र समान रूपशीलौ कन्यावरौ स्यातां परन्तु कन्यायाः सकाशाद् वरस्य बलायुषी द्विगुणे सार्द्धैकगुणे वा भवेताम्। म० १। सू० ५६। मंत्र ३

५५—यदा स्त्री प्रियः पुरुषः पुरुषप्रिया च भार्याभवेत्तदैव मंगलं वर्धेत। ऋ. म० १। सू० ५६। मंत्र ४।

संग स्त्री व्यभिचार को सब प्रकार छोड़ के विवाहित अपनी अपनी स्त्री और अपने अपने पुरुष के साथ ऋतुगामी ही होवें।

५३—सब लड़के और लड़कियों को योग्य है कि यथोक्त ब्रह्मचर्य के सेवन से संपूर्ण विद्याओं को पढ़ के पूर्ण युवावस्था में अपने तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले परस्पर परीक्षा कर के अतीव प्रेम के साथ विवाह कर, पुनः जो पूर्ण विद्या वाले हों तो लड़का लड़कियों को पढ़ाया करें, जो क्षत्रिय हों तो राज पालन और न्याय किया करें जो वैश्य हों तो अपने वर्ण के कर्म और जो शूद्र हों तो अपने कर्म किया करें।

५४—अति उत्तम विवाह वह है जिसमें तुल्य रूप स्वभाव युक्त कन्या और वर का संबन्ध होवे परन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा होना चाहिये।

५५—तू और वह स्त्री तुम दोनों एक दूसरे से आनन्द के लिये सदा वर्ता करो। जब स्त्री के प्रसन्न पुरुष और पुरुष के प्रसन्न स्त्री होवे तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द होता है।

अध्यापक विद्यार्थि स्वरूप निरूपण

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ऋ. म. १। सू. ३१। मं. ७

१—ईश्वरो विदुषः प्रत्याज्ञां ददाति। यूयमेकत्र विद्यालये चेतस्ततो वा भ्रमणं कुर्वन्तः सन्तोऽज्ञानिनो जनान् विदुषः संपादयत। यतः सर्वे मनुष्या विद्याधर्म सुशिक्षा सत्क्रियावन्तो भूत्वा सदैव सुखिनः स्युः।

२—अध्यापका पुत्रानध्यापिकाः पुत्रीश्च ब्रह्मचर्येण संयोज्य तेषां द्वितीयं विद्याजन्म संपाद्य जीवनोपायान् सुशिक्ष्य समये पितृभ्यः समर्पयेयुः ते च गृहं प्राप्यापि तच्छिक्षां न विस्मरेयुः।

१—ईश्वर विद्वानों को आज्ञा देता है कि तुम लोग एक जगह पाठशाला में, अथवा इधर-उधर देश देशान्तरों में भ्रमते हुए (भ्रमण करते हुए) अज्ञानी पुरुषों को विद्यारूपी ज्ञान देके विद्वान क्रिया करो कि जिससे सब मनुष्य लोग विद्याधर्म और श्रेष्ठ शिक्षायुक्त होके अच्छे २ कर्मों से युक्त होकर सदा सुखी रहें।

२—पढ़ाने वाले सज्जन पुत्रों और पढ़ाने वाली स्त्रियाँ पुत्रियों को ब्रह्मचर्य नियम में लगाकर इनके दूसरे विद्या जन्म को सिद्ध कर जीवन के उपाय अच्छे प्रकार सिखाय के समय पर उनके माता पिता को देवें और वे घर को जाकर भी उन गुरु जनों की शिक्षाओं को न भूलें। ऋ. म. १। सू. ११७। मंत्र २४।

३—विद्यार्थिभी राजादिगृहस्थैश्चाप्तानां विदुषां सकाशादुत्तमाः प्रज्ञाः प्रापणीयास्ते च विद्वांस स्तेभ्यो विद्यादिधनं प्रदाय सततं सुशिक्षितान् धार्मिकान् विदुषः संपादयन्तु। ऋ.म.१।११७।२३

४—मनुष्याः सदा धार्मिकाणा माप्तानां कर्माणि संसेव्य धर्मं जितेन्द्रियत्वाभ्यां विद्याः प्राप्यायुर्वर्धयित्वा सुसहाया सन्तो जगत्पालयेयुः। योगाभ्यासेन जीर्णानि शरीराणि त्यक्त्वा विज्ञानान्मुक्तिं च गच्छेयुरिति। ऋ० म० १।११७। मंत्र २५

५—हे जना यथा जलाभ्यन्तरे नौकादिषु स्थिताः सेनाः शत्रुभिर्हन्तुं न शक्यन्ते तथा विद्यासत्यधर्मोपदेशेषु स्थापिता जना अविद्या जन्य दुखेन न पीड्यन्ते। यथा समये शिल्पिनो नौकादिकं जल इतस्ततो नीत्वा शत्रून् विजयन्ते तथा विद्यादानेनाविद्यां यूयं

३—विद्यार्थी और राजा आदि गृहस्थों को, चाहिए कि शास्त्र वेत्ता विद्वानों के निकट से उत्तम बुद्धियों को लेवें और वे विद्वान् भी उनके लिये विद्या आदि धन को निरन्तर उन्हें अच्छी सिखावट सिखाय के धर्मात्मा विद्वान् करें।

४—मनुष्य सदा धार्मिक शास्त्र वक्ताओं के कर्मों को सेवन कर धर्म और जितेन्द्रियपन से विद्याओं को पाकर, आयु को बढ़ा के अच्छे सहाय युक्त हुए संसार की पालना करें; और योगाभ्यास से, जीर्ण अर्थात् बुड्ढे शरीरों को छोड़, विज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होवें।

५—हे मनुष्यो जैसे जल के भीतर नौका आदि में स्थित हुई सेना शत्रुओं से मारी नहीं जा सकती वैसे विद्या और सत्य धर्मके उपदेशों में स्थापित किये हुए जन, अविद्या जन्य दुःख से पीड़ा नहीं पाते। जैसे नियत समय पर कारीगर लोग नौकादि

विजयध्वं यथा यज्ञेहुतं द्रव्यं वायु जलादि शुद्धिकरं जायते तथा सदुपदेश आत्मशुद्धिकरो भवति । ऋ. १. । ११६ । मं २४

६—उपदेशकः स्व सदृशीं विदुषीं स्त्रियं परिणीय यथा स्वयं पुरुषा नुपदिदेशेद्बालकानध्यापयेत् तथा तत्स्त्री स्त्रिय उपदिशेत्तत्कन्याश्च पाठयेत् एवंकृते कुतश्चिदप्यविद्या भये न पीडयेताम् ।

ऋ. म. १ । सू. ५६ । मं. १

७—हे सर्वे विद्वान्सो नैव युष्माभिः कदचिदपि विद्यादि शुभ गुण प्रकाश करणे विलम्बालस्ये कर्त्तव्ये । यथा दिवसे सर्वे मूर्तिमन्तः पदार्थाः प्रकाशिता भवन्ति तथैव युष्माभिरपि सर्वे विद्या विषयाः सदैव प्रकाशिताः कार्याः ऋ. म. १ । सू. ३ । मं. ६ ।

८—भो विद्वान्सः परद्रोहरहिताः विशालविद्यया क्रिया

यानों को जल में इधर उधर ले जाके शत्रुओं को जीतते हैं वैसे विद्यादान से अविद्याओं को आप जीतो । जैसे यज्ञ कर्म में होमा हुआ द्रव्य वायु और जल आदि की शुद्धि करने वाला होता है, वैसे सज्जनों का उपदेश आत्मा की शुद्धि करने वाला होता है ।

६—उपदेशक अपने तुल्य विदुषी स्त्री के साथ विवाह करके जैसे आप पुरुषों को उपदेश और बालकों को पढ़ावे वैसे उसकी स्त्री स्त्रियों को उपदेश और कन्याओं को पढ़ावे ऐसा करने से किसी ओर से अविद्या और भय से दुःख नहीं हो सकता ।

७—सब विद्वान् निश्चय करके जान लेवें कि विद्या आदि शुभ गुणों के प्रकाश करने में किसी को कभी थोड़ा भी विलम्ब वा आलस्य करना योग्य नहीं है । जैसे दिन की निकासी में सूर्य सब मूर्तिमान पदार्थों का प्रकाश करता है । वैसे ही विद्वान् लोगों को भी विद्या के विषयों का प्रकाश सदा करना चाहिये ।

वन्तो भूत्वा सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो विद्यासुखयोः सदा दातारो भवन्त्विति । ऋ. म. १ । सू. ३ । मं ६ ।

६—ईश्वर उपदिशति न यावन्मनुष्या भूजलाग्न्यादि पदार्था नां गुणज्ञानोपकार ग्रहणाभ्यां भूजलाकाश गमनाय यानानि संपादयन्ति नैव तावत्तेषां दृढ़े राज्यश्रियौ सुसुखे भवतः ।

१०-११—ये सत्येन वेद विद्यायोगेन परमेश्वरं स्तुवन्ति प्रार्थयन्त्युपासते तेभ्य ईश्वरोऽन्तर्यामितया मंत्राणा मर्थान् यथावत्प्रकाशयित्वा सततं सुखं प्रकाशयति । अतो नैव तेषु कदाचिद्विद्यापुरुषार्थौ ह्रसतः । ऋ० म० १ । सू० १० । मंत्र १०

८—हे विद्वान् लोगो तुम दूसरे के विनाश और द्रोह रहित तथा अच्छी विद्या से क्रिया वाले होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख देते रहो ।

९—ईश्वर उपदेश करता है कि मनुष्य लोग जब तक भू जल आदि पदार्थों के गुण ज्ञान और उनके उपकार से भू जल और आकाश में जाने आने के लिये अच्छी सवारियों को नहीं बनाते तब तक उनको उत्तम राज्य और धन आदि उत्तम सुख नहीं मिल सकते । ऋ० म० १ । सू० ६ । मंत्र २ ।

१०—जो मनुष्य वेद विद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करते हैं उनके हृदय में ईश्वर अन्तर्यामि रूप से वेद मंत्रों के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिये सुख का प्रकाश करता है इससे इन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होते ।

११—हे (इन्द्र) स्तुति करने के योग्य परमेश्वर जैसे कोई सब विद्याओं से परिपूर्ण विद्वान् (स्तोमान्) आपकी स्तुतियों के

१२—ये मनुष्याः प्रेम्णा विद्योपदेष्टारं जीवेभ्यः सत्य विद्या प्रकाशकं सर्वज्ञं शुद्धमीश्वरंस्तुत्वा श्रावयन्ति ते सुखपूर्णं विद्यायुक्त मायुः प्राप्य-ऋषयो भूत्वा पुनः सर्वान् विद्यायुक्तान् मनुष्यान् विदुषः प्रीत्या संपादयन्ति। ऋ० म० १। सू० १०। मंत्र ११

१३—तथा प्रतिजनं नवीनं नवीनं वेदाध्ययनं तज्जन्योच्चारण क्रिया च प्रवर्तते तस्मान्नवीयसेत्युक्तम्। यैर्धर्मात्मभि र्मनुष्यै र्यथा वच्छब्दार्थ संबन्ध पुरः सरेण वेदस्याध्ययनेन तदुक्तकर्मणा च

अर्थों को (अभिस्वर) यथावत् स्वीकार करता कराता वा गाता है वैसे ही (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिये। तथा हे (वसो) सब प्राणियों को बसाने या इनमें बसने वाले! कृपा से इस प्रकार प्राप्त होके (नः) हम लोगों के (स्तोमान्) वेद स्तुति के अर्थों को (सचा) विज्ञान और उत्तम कर्मों का संयोग कराके (अभिस्वर) अच्छी प्रकार उपदेश कीजिये। (ब्रह्म च) और वेदार्थ को (अभिगृणीहि) प्रकाशित कीजिये (यज्ञं च) हमारे लिये होम ज्ञान और शिल्प विद्या रूप क्रियाओं को (वर्धय) नित्य बढ़ाइये।

१२—जो मनुष्य अपने प्रेम से विद्या का उपदेश करने वाला होकर, अर्थात् जीवों के लिये सब विद्याओं का प्रकाश सर्वदा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ आश्रय करते हैं वे सुख और विद्या युक्त पूर्ण आयु तथा ऋषि भाव को प्राप्त होकर सब विद्या चाहने वाले मनुष्यों को प्रेम के साथ उत्तम २ विद्या से विद्वान् करते हैं।

१३—हर एक मनुष्य को वेद आदि के नवीन २ अध्ययन से वेद की उच्चारण क्रिया प्राप्त होती है इस कारण 'नवीयसा' इस पद का उच्चारण किया है। जिन धर्मात्मा मनुष्यों ने यथावत् शब्दार्थ पूर्वक वेद के पढ़ने और वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से

प्रीतः संपादितो जगदीश्वर उत्तमानि विद्यादि धनानि शूरत्वादि गुणान् सतीमिच्छां च ददाति । ऋ० म० १ । सू० १२ । ११ मंत्र

१४—दिव्यानां विद्यानां प्रकाशकत्वाद्देवशब्देन वेदा गृह्यन्ते । यदा मनुष्यैः सत्यभावेन वेदवाण्या जगदीश्वरः स्तूयते तदायं प्रीतः सँस्तान् विद्यादानेन प्रीणयति । अयं भौतिकोऽग्निरपि विद्यया कला कौशलेन संप्रयोजित इन्धनादिस्थः सन् सर्वं क्रियाकाण्डं सेवते । म० १ । सू० १२ । मंत्र १२ ।

१५—मनुष्या कस्यचित् क्रिया कुशलस्य शिल्पिनः समीपे स्थित्वा तत्कृतिं प्रत्यक्षीकृत्य सुखेनैव शिल्प साध्यानि कर्माणि कर्तुं शक्नुवन्तीति । म० १ । सू० २० । मंत्र ६

१६—यथा होतृ यजमानौ प्रीत्या परस्परं मिलित्वा हवनादिकं

जगदीश्वर को प्रसन्न किया है उन मनुष्यों को वह उत्तम २ विद्या आदि धन तथा शूरता आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली श्रेष्ठ कामना को देता है । क्योंकि जो वेद के पढ़ने और परमेश्वर के सेवन से युक्त मनुष्य हैं, वे अनेक सुखों का प्रकाश करते हैं ।

१४—दिव्य विद्याओं के प्रकाश होने से देव शब्द से वेदों का ग्रहण किया है । जब मनुष्य लोग सत्य प्रेम के साथ वेद वाणी से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं तथा वह परमेश्वर उन मनुष्यों को विद्या दान से प्रसन्न करता है वैसे ही यह भौतिक अग्नि भी विद्या से कला कुशलता में युक्त किया हुआ इंधन आदि पदार्थों में ठहर कर सब क्रिया कांड का सेवन करता है ।

१५ —मनुष्य लोग किसी क्रिया कुशल कारीगर के निकट बैठ कर उसकी चतुराई को दृष्टिगोचर करके फिर सुख के साथ कारीगरी के काम करने को समर्थ हो सकते हैं ।

कर्म प्रवृत्तस्तथैवाध्यापकाध्येतारौ समागम्य सर्वा विद्या प्रकाशयेताम्। एवं समस्तैर्मनुष्यै रस्माकं विद्या वृद्धि र्भूत्वा वयं सुखानि प्राप्नुयामेति नित्यं प्रयतितव्यम्। म० १। सू० २५। मंत्र १

१७—मनुष्यैरेवं स्वसन्तानानि नित्यं योज्यानि। यः कारण रूपोऽग्निर्नित्योऽस्ति तस्मादीश्वर रचनया विद्युदादि रूपाणि कार्याणि जायन्ते। पुनस्तेभ्यो जाठरादि रूपाण्यनेकानि च तान् सर्वानग्नीन् कारणरूप एव धरति यावंत्यग्निकार्याणि सन्ति तावन्ति वायुनिमित्तेनैव जायन्ते। सर्वं जगत् तत्रस्थानि वस्तूनि च धरन्ति नैवाग्नि वायुभ्यां विना कदाचित्कस्यापि वस्तुनो धारणं संभवतीति। ऋ० म० १। सू० २६। मंत्र १०

१६—जैसे यज्ञ कराने और करने वाले प्रीति के साथ मिल कर यज्ञ को सिद्ध कर पूरण करते हैं वैसे गुरु शिष्य मिल कर सब विद्याओं का प्रकाश करें। सब मनुष्यों को इस बात की चाहना निरन्तर रखनी चाहिये कि जिससे हमारी विद्या की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे।

१७—मनुष्यों को योग्य है कि अपने संतानों को निम्नलिखित ज्ञान कार्य में युक्त करें। जो कारण रूप अग्नि है उससे ईश्वर की रचना में बिजली आदि कार्य रूप पदार्थ सिद्ध होते हैं। फिर उनसे जो सब जीवों के अन्न को पचाने वाले अग्नि के समान अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब अग्नियों को कारण रूप ही अग्नि धारण करता है। जितने अग्नि के कार्य हैं, वे वायु के निमित्त से ही प्रसिद्ध होते हैं उन सब पदार्थों द्वारा वायु धारण करते हैं। अग्नि और वायु के बिना कभी किसी पदार्थ का धारण नहीं हो सकता है।

१८—एवं यैः धार्मिकैः पुरुषार्थिभिः मनुष्यैः सेवितः सन् विद्वान् सर्वां विद्या प्राप्य तान् सुखिनः कुर्यात् । अस्मिन् जगत्युत्तम मध्यम निकृष्टभेदेन त्रिविधा भोग्या लोका मनुष्याश्चसन्त्ये तेषु यथाबुद्धि जनान् विद्यां दद्यात् । म० १ । सू० २७ । मंत्र ५

१९—विद्वद्भिर्विद्याप्रचाराय सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यं सार्थाः सांगाः सरहस्या सस्वर, हस्त क्रिया वेदा उपदेष्टव्याः । यदि कश्चित्सुख मिच्छेत् विद्वत्संगेन वेद विद्यां प्राप्नुयात । नैतया विना कस्यचित्सुखं भवति । तस्मादध्यापकै रध्येतृ भिश्च प्रयत्नेन सकला वेदा ग्राहयितव्या ग्रहीतव्याश्चेति । ऋ. म. १ । सू. ४० । मंत्र ६ ।

२०—नैव सर्वे मनुष्या विद्याप्रचारकार्यं विद्वांसं प्राप्नुवन्ति नहि समस्ता दाश्वांसो भूत्वासर्वेतु सुखं (अन्तर्वावत् अन्त-

---

१८—इस प्रकार जिन धार्मिक पुरुषार्थी पुरुषों से सेवन किया हुआ विद्वान् सब विद्याओं को प्राप्त करा के उनको सुख युक्त करे । तथा इस जगत् में उत्तम मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन प्रकार के भोग लोग और मनुष्य हैं । इनको यथा बुद्धि विद्या देता रहे ।

१९—विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रचार के लिये मनुष्यों को निरन्तर अर्थ, अंग, उपांग, रहस्य, स्वर और हस्त क्रिया सहित वेदों का उपदेश करें और ये लोग अर्थात् मनुष्य मात्र इन विद्वानों से सब वेद विद्या को साक्षात् करें, जो कोई पुरुष सुख चाहें तो वह विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करें । तथा इस विद्या के बिना किसी को सुख नहीं होता इससे पढ़ने पढ़ाने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं का ग्रहण करना वा कराना चाहिये ।

मध्ये वाति गच्छति सोंतर्वा वायुः स विद्यते यस्मिन् गृहे तत्) गृहं धर्तुं शक्नुवन्ति किन्तु कश्चिदेव भाग्यशाल्येतत्प्राप्तु मर्हति म० १ । सू० ४० । मंत्र ७ ।

२१—यदा विद्वांसो विद्यार्थिने त्रयस्त्रिंशतो देवानां विद्याः साक्षात्कारयन्ति तदैतेविद्युत्प्रमुखैः पदार्थैं रनेकानुत्तमान्व्यवहारान् साधितुं शक्नुवन्ति । म० १ । सू० ४५ । मंत्र २ ।

२२—मनुष्यैः सर्वदा सज्जनानाहूय सत्कृत्य सर्वेषां पदार्थानां विज्ञानं शोधनं तेभ्य उपकार ग्रहणञ्च कार्य मुत्तरोत्तर मेतद्विज्ञायैतद्विद्याप्रचारश्च कार्यः । म० १ । सू० ४५ ।

२३—यद्यध्यापको राजा च भ्रकुटीं कृत्वा विद्यार्थिनोऽमात्य प्रजाजनांश्च प्रेरयेत्तर्हि ते सुसभ्या विद्वांसो धार्मिकाश्च जायन्ते ।

२०—सब मनुष्य विद्या प्रचार की कामना वाले उत्तम विद्वान् को नहीं प्राप्त होते और न सब दानशील होकर सब ऋतुओं में सुख रूप घर को धारण कर सकते हैं । क्योंकि कोई हीं भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य इन सब को प्राप्त हो सकता है ।

२१—जब विद्वान् लोग विद्यार्थियों को तैंतीस देव अर्थात् पृथिवी आदि तैंतीस पदार्थों की विद्या को अच्छे प्रकार साक्षात्कार कराते हैं । तब वे बिजली आदि अनेक पदार्थों से उत्तम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि कर सकते हैं ।

२२—मनुष्यों को उचित है कि सर्वदा सज्जनों को बुला सत्कार कर सब पदार्थों का विज्ञान शोधन उनसे उपकार ले और उत्तरोत्तर इस को जान कर इस विद्या का प्रचार किया करें ।

२३—जो अध्यापक अपने विद्यार्थियों को और राजा अपने मंत्रियों और प्रजा जन को निरीक्षण और टेढ़ी भौंह से सन्मार्ग

ये मरण धर्म्येष्वमरण धर्माणं स्व प्रकाशरूपं परमात्मान मुपास्य सर्वान् मनुष्यान प्रज्ञान् विदुषो जनयन्ति त एव सर्वदा सत्कर्तव्या: सुखिनश्च भवन्ति। ऋ० म० ४

२४—हे अध्यापक राजन् वा त्वं श्रेष्ठान् श्रोत्रियान् अमात्यान् वा सुमत्या सत्याचरणेन संयोज्य संगतानि कर्माणि जोषय सूर्य वद् विद्या न्याय प्रकाशं च सततं कुरु। ऋ० म० ४

२५—त एव विद्वत्सः सन्ति ये श्रेष्ठस्य विदुषोऽनादरं न कुर्वन्ति त एवाध्यापको पदेशका: श्रेयांसो येऽस्माकं दोषान् दूरी कृत्य पवित्रयन्ति त एवास्माभिः सत्कर्तव्या: सन्ति।

के लिये प्रेरित करते हैं: वह विद्यार्थी अमात्य और प्रजाजन सभ्य विद्वान और धार्मिक बनते हैं। जो अध्यापक, मरने और जीने वालों में मृत्यु जन्म से रहित स्वप्रकाशरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और मनुष्यमात्र को बुद्धिमान और विद्वान बनाते हैं उनकी ही सदा पूजा करनी चाहिये और उन्हें ही यथार्थ में सुख और सन्तोष मिलता है।

२४—अध्यापक और राजा को चाहिए कि वह श्रेष्ठ श्रोत्रिय पुरोहित और उपदेश सुनने वालों विद्यार्थियों और मन्त्रियों को सुमति और सत्य आचरण और सदाचार से संयुक्त कर उन्हें संगत कर्मों के करने के लिये उत्साहित और युक्त करे। अध्यापक और राजा को चाहिये कि वह सूर्य की भांति विद्या और न्याय का प्रकाश प्रचार और आविष्कार किया करें।

२५—विद्वान् लोग श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष का अनादर और अपमान नहीं करते। जो अध्यापक और उपदेशक हमारे दोषों को दूर कर के हमें पवित्राचरण वाला बना रहे हैं। हमें उनकी ही पूजा और सन्मान करना चाहिए।

२६—हे मनुष्याः युष्माभिर्ये युष्माकं पितरो जनका आचार्याश्च युष्मभ्यं सुशिक्षया सूर्यवद्विद्या प्रकाशेनान्नादिदानेन वा सुखयन्ति ते नित्यं सेवनीयाः । ऋ. म. १ । सू. ७१ । मंत्र ६ ।

२७—यथा समुद्रं नद्यः प्राणान् विद्युदादयश्च संयुञ्जन्ति तथैव मनुष्या सर्वे पुत्रा कन्याश्च ब्रह्मचर्येण विद्याव्रते समाप्य युवावस्थां प्राप्य विवाहादिना सन्तानानुत्पाद्य तेभ्य स्तथैव विद्या सुशिक्षां ग्राहयेयु रनेन कश्चिदधिक उपकारो न विद्यत इति ।

२८—न सर्वैर्मनुष्यैः कदाचित्सुविद्या शरीर बलाभ्यां विना व्यावहारिक पारमार्थिक सुखे प्राप्येते । न खलु सन्तानेभ्यो विद्या दानेन विना मातृपित्रादयोऽनृणा भवितुं शक्नुवन्तीति वेद्यम् । सू. ७१ । मंत्र ८ ।

२६—हे मनुष्यो तुम्हारे पिता जनक और आचार्य तुम्हें सुशिक्षा द्वारा सूर्य की भांति विद्या प्रकाश और अन्नादि दान से सुखी करते हैं, उनकी नित्य सेवा करनी चाहिये ।

२७—जिस प्रकार नदियां समुद्र में और विद्युतादि प्राणों के साथ संयुक्त होती हैं उसी प्रकार से सब मनुष्यों को चाहिये कि पुत्र और कन्याओं को ब्रह्मचर्य धारण कराकर विद्याव्रत समाप्त करके, युवावस्था को प्राप्त होकर विवाह द्वारा सन्तानों को उत्पन्न कर उनको भी उसी प्रकार से सुशिक्षा और विद्या प्राप्त कराएं । संसार में इसके समान और इससे बड़ा कोई और उपकार नहीं है । ऋ. म. १ सू. ७१ । मंत्र ७

२८—सुविद्या शरीर बल के बिना मनुष्य व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख प्राप्त नहीं कर सकते । सन्तानों को शिक्षित किये बिना, विद्या दान दिये बिना, माता पिता ऋण से मुक्त नहीं हो

२६—ये मनुष्या विदुषां मातृ पितृणां सन्ताना भूत्वा मातृ-पित्राचार्यैः प्राप्तशिक्षा बह्वन्नैश्वर्यविद्याः स्युस्तेऽन्येष्वप्येतत्सर्वं वर्द्धयेयुः । म० १ । सू० ७६ । मंत्र ४ ।

३०—यथा विद्युद्भौम सूर्य रूपेणाग्निः सर्वं मूर्तं द्रव्यं द्योतयति तथाऽऽनूचानो विद्वान् सर्वा विद्याः प्रकाशयति ।

३१—जलवच्छान्ताः प्राणवत् प्रियाः धर्म्यादिदिव्य क्रियाः कुर्युः । सर्वेषां शरीरात्मनोः यथार्थरक्षणं जानीयुः, भूगर्भादि विद्याभिः प्राचीन वेदविद् विद्वद्वर्तेरन् वेद द्वारेश्वरप्रणीतं धर्मं प्रचारयेयुस्ते विद्वांसो विज्ञेया एतद्विपरीता स्युः तेऽविद्वांसाश्चेति निश्चिनियुः । म० १ । सू० ८३ । मंत्र २ ।

सकते । पितृ ऋण से उऋण होने के लिये सन्तानों को शिक्षित करना ही एक मात्र उपाय है ।

२६—जो मनुष्य विद्वान् माता और पिताओं के सन्तान होके माता पिता और आचार्य से विद्या की शिक्षा को प्राप्त होकर बहुत अन्नादि ऐश्वर्य और विद्याओं को प्राप्त होवें । अन्य मनुष्यों में भी यह सब बढ़ावें ।

३०—जैसे बिजली प्रसिद्ध पावक सूर्य अग्नि सब मूर्तिमान द्रव्य को प्रकाश करता है । वैसे सर्व विद्यावित सत्पुरुष सब विद्या का प्रकाश करता है । सू. ७६ । मं. ५ ।

३१—जो जल की भांति शान्त स्वभाव के, प्राणों की भान्ति प्रिय और धर्म युक्त शुद्ध क्रियाओं को करें । सब के शरीर और आत्मा का यथावत् रक्षण करना जानें और भूगर्भादि विद्याओं से प्राचीन आप्त विद्वानों के तुल्य वेद द्वारा ईश्वर प्रणीत सत्य धर्म मार्ग का प्रचार करें वे विद्वान् हैं और जो इनसे विपरीत

३२—विद्वद्भिर्यथा जलं विच्छिद्यान्तरिक्षं गत्वा वर्षित्वा सुखं जनयति तथैव कुव्यसनादि छित्वा विद्या मुपगृह्य सर्वेजनाः सुखयितव्याः । यथा सूर्योऽन्धकारं विनाश्य प्रकाशं जनयित्वा सर्वान् प्राणिनः सुखयति दुष्टान् भीपयते तथैव जनानामज्ञानं नाशयित्वा सदैव सुखं संपादनीयम् । यथा मेघो गर्जित्वा वर्षित्वा दौर्भिक्ष्यं विनाश्य सौभिक्ष्यं करोति तथैव सदुपदेशवृष्ट्याऽधर्मं विनाश्य धर्मं प्रकाश्य जनाः सर्वदानन्दयितव्याः ।

म० १ । सू० ८३ । मन्त्र ६

३३—मनुष्या अस्य जगतो मध्ये जन्म प्राप्य विद्या शिक्षां गृहीत्वा वायु वत् कर्माणि कृत्वा सुखानि भुंजीरन् ।

म० १ । सू० ८५ । मन्त्र ४ ।

३४—विदुषां शिक्षया विना मनुष्येषूत्तमा गुणा न जायन्ते

हों, वे अविद्वान् हैं इस प्रकार विद्वान् अविद्वान् को निश्चय से जानें ।

३२—विद्वान् लोगों को चाहिए कि जैसे जल छिन्न भिन्न होकर आकाश में जा वहां से वर्ष के सुख करता है वैसे कुव्यसनों को छिन्न भिन्न कर विद्या को ग्रहण करके सब मनुष्यों को सुखी करें । जैसे सूर्य अन्धकार का नाश और प्रकाश करके सब प्राणियों को सुखी और दुष्ट चोरों को दुखी करता है वैसे मनुष्यों के अज्ञान का नाश और विज्ञान की प्राप्ति करा के सब को सुखी करें । जैसे मेघ गर्जना कर और वर्ष के दुर्भिक्ष को छुड़ा सुभिक्ष करता है वैसे ही सत्योपदेश की वृष्टि से अधर्म का नाश और धर्म के प्रकाश से सब मनुष्यों को आनन्दित किया करें ।

३३—मनुष्य लोग इस जगत् में जन्म पा विद्या शिक्षा का ग्रहण और वायु के समान कर्म करके सुखों को भोगें ।

तस्मादेतन्नित्य मनुष्ठेयम्। म० १। सू० ८६। मन्त्र ४।

३५—यो मनुष्यः सुशिक्षितः सुपरीक्षितः शुभलक्षणः सर्व विद्यो द्रढिष्ठो बलिष्ठोऽध्यापकः सुसहायः पुरुषार्थी धार्मिको विद्वानस्ति स एव पूर्णान् धर्मार्थ काम मोक्षान् प्राप्तः सन् प्रजायाः दुःखानि निवार्य परां विद्यां श्रुत्वा प्राप्नोति नातो विरुद्धः।

म० १। सू० ८६। मन्त्र ५

३६—यथा ऋतुस्थाः वायवः प्राणिनो रक्षित्वा सुखयन्ति तथा विद्वांसः सर्वेषां सुखाय प्रवर्तेरन् न किल कस्यचिद्दुःखाय।

३७—यथा मेघेन कूपोदकेन वा सिक्ताः प्राणिनः सुखयन्ति तथैव विद्वांसो विद्या सुशिक्षां जनयित्वा वनान्युपवनानि वा निजफलैः निज परिश्रमफलेन सर्वान्मनुष्यान् सुखयन्तीति।

म० १। सू० ८८। मन्त्र ३

३४—विद्वानों की शिक्षा के विना मनुष्यों में उत्तम गुण उत्पन्न नहीं होते। इससे इसका अनुष्ठान नित्य करना चाहिए।

३५—जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से युक्त अच्छे प्रकार परीक्षित शुभ लक्षणयुक्त संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता दृढांग अति बली पढ़ाने हारा श्रेष्ठ सहाय से सहित पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् है वही धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त होके प्रजा के दुःख का निवारण कर परा विद्या को सुनके प्राप्त होता है इससे विरुद्ध नहीं।

३६—जैसे सब ऋतु में ठहरने वाले वायु सब प्राणियों की रक्षा कर उनको सुख पहुँचाते हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब के सुख के लिये प्रवृत्त हों न कि किसी के दुःख के लिये। सू.८६।६मंत्र

३७—जैसे मेघ वा कूप जल से सिंचे हुए वन और उपवन बाग बगीचे अपने फलों से प्राणियों को सुखी करते हैं, वैसे

३८—शिल्प विद्या वर्द्धितारावध्येत्रध्यापकौ यावदधीत्य विजानीयातां तावत् सर्वं सर्वेषा मनुष्याणां सुखाय निष्कपटतया नित्यं प्रकाशयेताम्। यतोवयमीश्वर सृष्टिस्थानां वाय्वादीनां पदार्थानां सकाशादनेकानुपकारान् गृहीत्वा सुखिनः स्याम। म० १। सू० ८६। मन्त्र ४।

३९—यस्यां प्राप्तायां विद्यायां बालका अपि वृद्धा भवन्ति यत्र शुभाचरणेन वृद्धावस्था जायते तत्सर्वं विदुषां संगेनैव भवितुं शक्यते। विद्वद्भिरेतत्सर्वेभ्यः प्रापयितव्यं च। म. १। सू० ८६। ६

४०—नहि विद्वद्भिर्विना केनचिद् धनानि धर्माचरणानि च रक्षितुं शक्यन्ते तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैः नित्यं विद्या प्रचारणीया यतः सर्वे विद्वान्सो भूत्वा धार्मिका भवेयुरिति। म०१।सू०९०।मन्त्र२

विद्वान् लोग विद्या और अच्छी शिक्षा करके अपने परिश्रम के फल से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करते हैं।

३८—शिल्प विद्या की उन्नति करने हारे जो उसके पढ़ने पढ़ाने हारे विद्वान् हैं, वे जितना पढ़ के समझें उतना यथार्थ सबके सुख के लिये नित्य प्रकाशित करें जिससे हम लोग ईश्वर की सृष्टि के पवन आदि पदार्थों से अनेक उपकारों को लेकर सुखी हों।

३९—जिस विद्या से बालक भी वृद्ध होते वा जिस शुभ आचरण में वृद्धावस्था होती है वह सब व्यवहार विद्वानों के संग ही से हो सकता है और विद्वानों को चाहिये कि यह उक्त व्यवहार सब को प्राप्त करावें।

४० विद्वानों के विना किसी से धन और धर्मयुक्त आचार रखे नहीं जा सकते इससे सब मनुष्यों को नित्य विद्या प्रचार

४१—अध्येतृभिर्यथाऽध्यापका विद्याशिक्षा कुर्युस्तथैव संगृह्य ताः सुविचारेण नित्य मुन्नेयाः । ऋ. म. १ । सू. ९० । मं ५ ।

४२—अध्यापका यूयं वयं चैवं प्रयतेमहि यतः सर्वेभ्यः पदार्थेभ्योऽखिलानन्दाय विद्ययोपकारान् ग्रहीतुं शक्नुयाम ।
ऋ. म. १ । सू. ९० । मं. ६ ।

४३—यथा जगदीश्वरः स्वसृष्टौ वेद द्वारा सृष्टिक्रमान् दर्शयित्वा सर्वाः विद्याः प्रकाशयति तथैव् विद्वांसोऽधीतैः सांगोपांगैर्वेदैर्हस्तक्रियया च कलाकौशलानि दर्शयित्वा सर्वान् सकलाविद्या ग्राहयेयुः । म० १ । सू० ९१ । मंत्र ४

४४—नहीश्वर विद्वदोषधिगणै स्तुल्यः प्राणिनां सुखकारी कश्चिद् वर्तते तस्मात् सुशिक्षाऽध्ययनाभ्या मेतेषां बोधवृद्धिं कृत्वा

करना चाहिये । जिससे सब मनुष्य विद्वान् होके धार्मिक हों ।

४१—पढ़ने वालों को चाहिए कि पढ़ाने वाले जैसी विद्या की शिक्षा करें, वैसे उसका ग्रहण कर अच्छे विचार से नित्य उनकी उन्नति करें ।

४२—हे पढ़ाने वालो तुम और हम ऐसा अच्छा यत्न करें कि जिससे सृष्टि के पदार्थों से समस्त आनन्द के लिये विद्या ग्रहण करके उपकारों को ग्रहण करें ।

४३—जैसे जगदीश्वर अपनी रची सृष्टि में वेद के द्वारा इस सृष्टि के कर्मों को दिखा कर सब विद्याओं का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् पढ़े हुए अंग और उपांग सहित वेदों से, हाथ क्रिया के साथ कलाओं की चतुराई को दिखा कर सब को समस्त विद्या का ग्रहण करावें ।

४४—ईश्वर, विद्वान् और ओषधि समूह के तुल्य प्राणियों को कोई सुखी करने वाला नहीं है इससे उत्तम शिक्षा और विद्या

तदुपयोगश्च मनुष्यैर्नित्यमनुष्ठेयः। म. १। सू. ६१। मन्त्र ११

४५—नहि कस्यापि मनुष्यस्याध्यापनेन परीक्षया च विना विद्यासिद्धिर्जायते नहि पूर्णं विद्यया विनाऽऽध्यापनं परीक्षां च कर्तुं शक्नोति। नह्येतया विना सर्वाणि सुखानि जायन्ते तस्मादेतन्नित्य मनुष्ठेयम्। म. १। सू. ६३। मन्त्र १

४६—यो ब्रह्मचारी विद्यार्थ मध्यापक परीक्षकौ प्रति सुप्रीतिं कृत्वौभौ नित्यं सेवते स एव महाविद्वान् भूत्वा सर्वाणि सुखानि लभते। ऋ. म. १। सू. ६३। मं. २

४७—हे विद्वांसो येन प्रकारेण मनुष्येष्वात्म शिल्प व्यवहार विद्याः प्रकाशिता भूत्वा सुखोन्नतिः स्यात्तथा कर्तव्यम्।

४८—नहि मनुष्यो ब्रह्मचर्येण विद्या प्राप्त्या विना कवि

ध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मनुष्यों को नित्य वैसे ही करना चाहिये।

४५—किसी मनुष्य को पढ़ाने और परीक्षा के विना विद्या की सिद्धि नहीं होती और कोई मनुष्य पूरी विद्या के विना किसी दूसरे को पढ़ा और उसकी परीक्षा नहीं कर सकता और इस विद्या के विना समस्त सुख नहीं होते इससे इसका संपादन नित्य करें।

४६—जो ब्रह्मचारी विद्या के लिये पढ़ाने और परीक्षा करने वालों के प्रति उत्तम प्रीति को करके और उनकी नित्य सेवा करता है वही बड़ा विद्वान होकर सब सुखों को पाता है।

४७—हे विद्वानो जिस ढंग से मनुष्यों में आत्मज्ञान और शिल्प व्यवहार की विद्या प्रकाशित होकर सुख की उन्नति हो वैसा यत्न करो। म. १। सू. ६४। मंत्र ८।

भवितुं शक्नोति न च कवित्वेन विना परमेश्वरं विद्युतं च विज्ञाय कार्याणि कर्तुं शक्नोति तस्मा देतन्नित्य मनुष्ठेयम् । म.१।६६।१ मंत्र

४६—मनुष्यैर्योनित्यं विद्या प्रदाताऽस्ति तमृजुभावेन सेवित्वा विद्याः प्राप्य मित्राच्छ्रेष्ठादा काशान्नदीभ्यो भूमेर्दिवश्चोपकारं गृहीत्वा सर्वेषु मनुष्येषु सत्कारेण भवितव्यम् । नैव कदाचिद्विद्या-गोपनीया किन्तु सर्वैरियं प्रसिद्धिकार्येति । म०१।सू० १००। मंत्र १६

५०—विद्यां चिकीर्षु भिर्ब्रह्मचारिभिर्विदुषां समीपं गत्वाऽनेक विधान् प्रश्नान् कृत्वोत्तराणि प्राप्य विद्या वर्धनीया । भो अध्या-पका विद्वांसो यूयं स्वागत मागच्छत मत्तोऽस्य संसारस्य पदार्थ समूहस्य विद्या अभिज्ञाय सर्वानन्यानेव मेवाध्याप्य सत्यमसत्यं च यथार्थतया विज्ञापयत । म. १ । सू. १०५ । मंत्र ४ ।

४८—मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या की प्राप्ति के विना कवि नहीं हो सकता और न कवितांई (कविता) के विना परमेश्वर व बिजली को जान कर कार्यों को कर सकता है, इससे उक्त ब्रह्म-चर्य आदि नियम का अनुष्ठान नित्य करना चाहिए।

४६—मनुष्यों को उचित है कि जो नित्य विद्या का देने वाला है उसकी सीधे पन से सेवा करके विद्याओं को पाकर मित्र श्रेष्ठ आकाश नदियों भूमि और सूर्य आदि लोकों से उप-कारों को ग्रहण करके सब मनुष्यों में सत्कार के साथ होना चाहिये। कभी विद्या छिपानी नहीं चाहिए । किन्तु सब को यह प्रकट करनी चाहिए।

५०—विद्या को चाहते हुए ब्रह्मचारियों को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर अनेक प्रकार के प्रश्नों को करके और उनसे उत्तर पाकर विद्या को बढ़ावें । और हे पढ़ाने वाले विद्वानो तुम लोग अच्छा गमन जैसे हो वैसे आओ और हम से इस संसार

५१—यथा सागरेभ्यो जलमुत्थित मूर्ध्वं गत्वा सूर्यातपेन वितत्य प्रवर्ष्य च सर्वेभ्य प्रजाजनेभ्य: सुखं प्रयच्छति तथा विद्वज्जनैर्नित्यं नवीन विचारेण गूढा विद्या ज्ञात्वा प्रकाश्य सकल हितं संपाद्य सत्यधर्मं विस्तार्य प्रजा: सततं सुखयितव्या: ।

५२—यो मनुष्यो देहधारी जीवस्स्वबुद्धया प्रयत्नेन विदुषां सकाशात्सर्वा विद्या: श्रुत्वा मत्वा निदिध्यास्य साक्षात्कृत्वा दुष्ट गुण स्वभावपापानि त्यक्त्वा विद्वान् जायते स आत्मशरीर रक्षणादिकं प्राप्य बहु सुखं प्राप्नोति । म. १ । सू. १०५ । मंत्र १६

५३—यथे श्वरेण सृष्टा: पृथिव्यादय: पदार्था: सर्वेषां प्राणिना मुपकाराय वर्तन्ते तथैव सर्वेषा मुपकाराय विद्वद्भिर्नित्यं वर्तितव्यम्

के पदार्थों की विद्या को सब प्रकार से जान औरों को पढ़ा कर सत्य और असत्य को यथार्थ भाव से समझाओ ।

५१—जैसे समुद्रों से जल उड़ कर ऊपर को चढ़ा हुआ सूर्य के ताप से फैल कर बरस के सब प्रजाजनों को सुख देता है वैसे विद्वान् जनों को नित्य नवीन नवीन विचार से गूढ विद्याओं को जान और प्रकाशित कर सब के हित का संपादन और सत्य धर्म के प्रचार से प्रजा को निरन्तर सुख देना चाहिए । सू. १०५।१२

५२—जो मनुष्य वा देहधारी जीव अर्थात् स्त्री आदि भी अपनी बुद्धि से प्रयत्न के साथ पंडितों की उत्तेजना से समस्त विद्याओं को सुन, मान, विचार और प्रकट कर खोटे गुण स्वभाव व खोटे कार्यों को छोड़ कर विद्वान् होता है वह आत्मा और शरीर की रक्षा आदि को पाकर बहुत सुख पाता है ।

५३—जैसे ईश्वर के बनाए हुए पृथिवी आदि पदार्थ सब प्राणियों के उपकार के लिये हैं वैसे ही सब के उपकार के लिये

यथा सुदृढस्य यानस्योपरि स्थित्वा देशान्तरं गत्वा व्यापारेण विजयेन वा धनप्रतिष्ठे प्राप्य दारिद्र्याप्रतिष्ठाभ्यां विमुच्यसुखिनो भवन्ति तथैव विद्वांस उपदेशेन विद्यां प्रापय्य सर्वान् सुखिनः संपादयन्तु। मंत्र २। सू० १०६। ऋ० म० १।

५४—नहि विद्यार्थिना कपटिनोऽध्यापकस्य समीपे स्थातव्यं किन्तु विदुषां समीपे स्थित्वा विद्वान् भूत्वर्षिस्वभावेन भवितव्यम्। स्वात्मरक्षणायाधर्माद्भीत्वा धर्मे सदा स्थातव्यम्।

मं० १। सू० १०६। मंत्र ६

५५—अस्मिन् जगति विद्वद्भिः स्व पुरुषार्थेन याः शिल्पक्रियाः प्रत्यक्षीकृतास्ताः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यः प्रकाशिता कार्या यतो बहवो मनुष्याः शिल्पक्रियाः कृत्वा सुखिनः स्युः। ऋ०म०१।सू०१०८मंत्र२

विद्वानों को नित्य अपना वर्ताव रखना चाहिए। जैसे दृढ़ विमान आदि यान पर बैठ देशदेशान्तर को जा आकर व्यापार व विजय से धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो दरिद्रता और अयश से छूट कर सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् जन अपने उपदेश से विद्या को प्राप्त करा कर सब को सुखी करें।

५४—विद्यार्थी को कपटी पढ़ाने वाले के समीप ठहरना नहीं चाहिए किन्तु आप्त विद्वानों के समीप ठहरे और विद्वान् होकर ऋषिजनों के स्वभाव से युक्त होना चाहिए और अपने आत्मा की रक्षा के लिये अधर्म से डर कर धर्म में सदा रहना चाहिए।

५५—इस संसार में विद्वानों को चाहिए कि जो उन्होंने अपने पुरुषार्थ से शिल्पक्रिया प्रत्यक्ष कर रक्खी है उनको सब मनुष्यों के लिये प्रकाशित करें कि जिससे बहुत मनुष्य शिल्प क्रियाओं को करके सुखी हों।

५६—जन्म समये सर्वेऽविद्वांसो भवन्ति पुनर्विद्याभ्यासं कृत्वा विद्वांसश्च तस्माद्विद्या हीना मूर्खा, ज्येष्ठा, विद्यावन्तश्च कनिष्ठा गण्यन्ते। कोऽपि भवेत् परन्तु तं प्रति सत्यमेव वाच्यं न कंचित्प्रत्यसत्यम्। ऋ०म० १। सू० १०८। मंत्र६

५७—यत्र यत्र स्वामिशिल्पिनावध्यापकाध्येतारौ राजप्रजा पुरुषौ वा गच्छेतां खल्वागच्छेतां वा तत्र २ सभ्यतया स्थित्वा विद्या शांति युक्तं वचः संभाष्य सुशीलतया सत्यं वदतां सत्यं शृणुतां च।

५८—हे मनुष्या यः सुशिक्षया मनुष्येषु सूर्यवद्विद्याप्रकाशको मातृपितृवत्कृपया रक्षकोऽध्यापकस्तथा सूर्यवत् प्रकाशितप्रज्ञोऽध्येता चास्ति तौ नित्यं सत्कुरुत न ह्येते कर्मणा विना कदाचिद्विद्योन्नतिः संभवति। ऋ० म० १। सू० १०६। मंत्र ८

५६—जन्म के समय में सब मूर्ख होते हैं और फिर विद्या का अभ्यास करके विद्वान् भी हो जाते हैं। इससे विद्या हीन मूर्खजन ज्येष्ठ और विद्वान् जन कनिष्ठ गिने जाते हैं। सब को यही चाहिए कि कोई हो परन्तु उसके प्रति सांची ही कहें किंतु किसी के प्रति असत्य न कहें।

५७—जहां २ स्वामी और शिल्पी व पढ़ाने-पढ़ने वाले वा राजा और प्रजा जन जायें व आवें वहां २ सभ्यता से स्थित हों विद्या और शांति युक्त वचन को कह और अच्छे शील का ग्रहण कर सत्य कहें और सुनें।

५८—हे मनुष्यो जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश कर्ता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने व पढ़ाने वाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त और दूसरा पढ़ने वाला है, उन दोनों का नित्य सत्कार करो

५६—विदुषामिदमेव मुख्यं कर्मास्ति यद् जिज्ञासूनविदुषो विद्यार्थिनः सुशिक्षाविद्यादानाभ्यांवर्द्धयेयुः। यथामित्रादयः प्राणादयो वा सर्वान् वर्धयित्वा सुखयन्ति तथैव विद्वांसोपि वर्तेरन।

६०—अध्यापकोपदेशकयोरिदं योग्यमस्ति विद्याधर्मोपदेशेन सर्वान् जनान् विदुषो धार्मिकान् संपाद्यपुरुषार्थिनः सततं कुर्याताम्। ऋ० म० १। सू० ११२। मंत्र १६।

६१—यथा मातापितरौ सन्तानान्मित्रः सखायं प्राणश्च शरीरं प्रीणाति समुद्रोगांभीर्यादिकं पृथिवी वृक्षादीन् सूर्यः प्रकाशं च धृत्वा सर्वान् प्राणिनः सुखिनः कृत्वोपकारं जनयन्ति तथाऽऽध्यापकोपदेष्टारःसर्वाः सत्यविद्याः सुशिक्षाश्च प्रापय्येष्टं सुखं प्रापयेषुः। म० १ सू० ११२। मंत्र २५

इस काम के बिना कभी विद्या की उन्नति होने का संभव नहीं है।

५६—विद्वानों का यही मुख्य कार्य है कि जो जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान चाहने वाले विद्या के न पढ़े हुए विद्यार्थियों को, अच्छी शिक्षा और विद्यादान से बढ़ावें जैसे मित्र आदि सज्जन वा प्राण आदि पवन सबकी वृद्धि करके उनको सुखी करते हैं. वैसे ही विद्वान् जन भी अपना वर्ताव रखें।

६०—अध्यापक और उपदेष्टाओं को यह योग्य है कि विद्या और धर्म के उपदेश से सब जनों को विद्वान् धार्मिक करके पुरुषार्थ युक्त निरन्तर किया करें।

६१—जैसे माता और पिता अपने २ सन्तानों सखा मित्रों और प्राण शरीर को प्रसन्न करते हैं और समुद्र गम्भीरतादि, पृथिवी वृक्षादि और सूर्य प्रकाश को धारण कर और सब प्राणियों को सुखी करके उपकार को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही पढ़ाने और

६२—यदाऽऽप्ता वेदविदः पाठका उपदेष्टारश्च पाठिका उपदेष्ट्र्यश्च सुशिक्षयाब्रह्मचारिणः श्रोतॄँश्च ब्रह्मचारिणीः श्रोत्रीश्च विद्यायुक्ताः कुर्वन्ति तदैवेमे शरीरात्म बलं प्राप्य सर्वं जगत् सुखयन्ति। म० १। सू० ११४

६३—वैद्यस्योपदेशकस्य चेयं योग्यतास्ति स्वयमरोगः सत्याचारी भूत्वा सर्वेभ्यो मनुष्येभ्य औषधदानेनोपदेशेनचोपकृत्य सर्वान् सततं रक्षेत्। ऋ० म० १। सू० ११४

६४—मनुष्याणां योग्यमस्ति श्रेष्ठानध्यापकानाप्तान् प्राप्य नमस्कृत्य गणितादि क्रिया कौशलतां परिगृह्य सूर्य संबन्धि व्यवहारानुष्ठानेन कार्यं सिद्धिं कुर्युः। मण्ड १ सू० ११५

उपदेश करने हारे सब सत्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराके सब को इष्ट सुख से युक्त करें।

६२—जब आप्त सत्यवादी धर्मात्मा वेदों के ज्ञाता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् तथा पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्री उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचारी और श्रोता पुरुषों तथा ब्रह्मचारिणी और सुनने हारी स्त्रियों को विद्यायुक्त करते हैं तभी ये लोग शरीर आत्मा के बल को प्राप्त होकर सब संसार को सुखी कर देते हैं।

६३—वैद्य और उपदेश करने वाले को यह योग्य है कि आप नीरोग और सत्याचारी होकर सब मनुष्यों के लिये औषध देने और उपदेश करने से उपकार कर सब की निरन्तर रक्षा करें।

६४—मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ पढ़ाने वाले शास्त्रवेत्ता विद्वानों को प्राप्त हो उनका सत्कार कर उनसे विद्या गणित आदि क्रियाओं की चतुराई को ग्रहण कर सूर्य सम्बन्धी व्यवहारों का अनुष्ठान कर सिद्धि करें।

६५—आप्तवध्यापकौ पुरुषौ यस्मै शमादियुक्ताय सज्जनाय विद्यार्थिने शिल्पकार्याय हस्तक्रियायुक्तां बुद्धिं जनयतः स प्रशस्तः शिल्पीभूत्वा यानानि रचयितुं शक्नोति। शिल्पिनो यस्मिन् याने जलं सेसिच्याधोऽग्निं प्रज्वाल्य वाष्पैर्यानानि चालयंति तेन तेऽश्वै-रिव विद्युदादिभिः पदार्थैः सद्यो देशान्तरं गन्तुं शक्नुयुः।

म० सू० ११६। मंत्र ७

६६—हे मनुष्या विद्याकोशात्परं सुखप्रदं धनं किमपि यूयं मा जानीत। न खल्वेतेन कर्मणा विनाऽऽभीष्टानि अपत्यानि सुखानि च प्राप्तुं शक्यानि नैव समीक्षया विना विद्यावृद्धिर्जायत इत्य वगच्छत। म० सू० ११६। मंत्र ११

६७—हे विद्वांसो यथा विद्वान् विदुष्याः पाणिं गृहीत्वा गृहा-

६५—जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से रोकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिये, शिल्प कार्य अर्थात् कारीगरी सिखाने को हाथ की चतुराई युक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात सिखाते हैं, वह प्रशंसा युक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदि को बना सकता है। शिल्वी जन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथ में जलघर से जल सींच और नीचे आग जला कर भाफों से उसे चलाते हैं उससे वे धूएँ से जेसे वैसे विजली आदि पदार्थों से शीघ्र एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं।

६६—हे मनुष्यो विद्यानिधि के परे सुख देने वाला धन कोई भी तुम मत जानो। न इस कर्म के बिना चाहे हुए सन्तान और सुख मिल सकते हैं और न सत्यासत्य के विचार से निर्णीत ज्ञान के बिना विद्या, की वृद्धि होती है यह जानो।

श्रम व्यवहारं साधयति तथा बुद्धिमतो विद्यार्थिनः संगृह्य पूर्णं विद्या प्रचारं कुरुत यथा चाध्यापका दध्येतारो विद्याः संगृह्या नन्दिता भवन्ति तथा विद्वान्सौ स्त्रीपुरुषौ स्वकीय परकीयापत्येभ्यः सुशिक्षया विद्यां दत्वा सदा प्रमोदेताम्।

६८—आप्ता उपदेशकाध्यापका जना यथा प्रत्यक्षं गवादिक मदृष्टंवस्तु वा दर्शयित्वा साक्षात्कारयन्ति तथा शमादि गुणान्वितेभ्यो धीमद्भ्यः श्रोतृभ्योऽध्येतृभ्यश्च पृथिवी मारभ्येश्वर पर्यन्तानां पदार्थानां सांगोपांगा विद्याः साक्षात्कारयन्तु नात्र कपटालस्यादि कुत्सितं कर्म कदाचित्कुर्युः। म० १ सू० ११६। मंत्र २३

६९—अस्मिन् संसारे यो यस्मै सत्या विद्याः प्रदद्यात् स तं

६७—हे विद्वानो जैसे विद्वान् जन विदुषी स्त्री का पाणि ग्रहण कर गृहाश्रम के व्यवहार को सिद्ध करे वैसे बुद्धिमान् विद्यार्थियों का संग्रह कर, पूर्ण विद्या प्रचार को करे और जैसे पढ़ाने वाले से पढ़ने वाले विद्या का संग्रह कर आनन्दित होते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष अपने तथा औरों के सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्या देकर सदा प्रमुदित होवें।

६८—शास्त्र के वक्ता उपदेश करने वाले और विद्या पढ़ाने वाले विद्वान् जन जैसे प्रत्यक्ष गौ आदि पशु को वा छिपे हुए वस्तु को दिखाकर प्रत्यक्ष कराते हैं वैसे शम दम आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान श्रोता वा अध्येताओं की पृथिवी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों का विज्ञान देने वाली समस्त विद्याओं को प्रत्यक्ष करावें और इस विषय में कपट और आलस्य आदि निन्दित कर्म कभी न करें!

६९—इस संसार में जो जिसके लिये सत्य विद्याओं को देवे

मनोवाक्कायैः सेवेत। यः कपटेन विद्यां गूहेत तं सततं तिरस्कुर्यात्। एवं सर्वे मिलित्वा विदुषां मान मविदुषा मपमानं च सततं कुर्युर्यतः सत्कृताः विद्वान्सो विद्या प्रचारे प्रयतेरन्नसत्कृता अविद्वांसश्च।

मं० १। सू० १२०। मंत्र ३

६०—विद्वांसो नित्यमाबाल वृद्धान् प्रति सिद्धान्त विद्या उपदिशेयुर्यत स्तेषां रक्षोन्नती स्याताम्। ते च तान् सेवित्वा सुशीलतया पृष्ट्वा समाधानानि दधीरन्। एवं परस्पर मुपकारेण सर्वे सुखिनः स्युः। मं० १। अ० १७ सू० १२०। मंत्र ४

७१—मनुष्यैर्यद्यदाप्तेभ्योऽधीयते श्रूयते तत्तदन्येभ्यो नित्य मध्याप्य मुपदेशनीयं च यथाऽन्येभ्यः स्वयं विद्यां गृह्णीयात्तथैव प्रपदद्यात्। नो खलु विद्यादानेन सदृशोऽन्यः कश्चिदपि धर्मोऽधिको विद्यते। मंत्र ६। म० १। सू० १२०।

वह उसको मन वाणी और शरीर से सेवे और जो कपट से विद्या को छिपावे उसका निरन्तर तिरस्कार करे। ऐसे सब लोग मिल-मिला के विद्वानों का मान और मूर्खों का अपमान निरन्तर करें जिससे सत्कार को पाए हुए विद्वान् विद्या के प्रचार करने में अच्छे २ यत्न करें और अपमान को पाए हुए मूर्ख भी करें।

७०—विद्वान् जन नित्य बालक आदि वृद्ध पर्यन्त मनुष्यों को सिद्धान्त विद्याओं का उपदेश करें जिससे उनकी रक्षा और उन्नति होवे और वे भी उनकी सेवा कर अच्छे स्वभाव से पूँछ कर विद्वानों के दिये हुए समाधानों को धारण करें ऐसे हिलमिल के एक दूसरे के उपकार से सब सुखी हों।

७१—मनुष्यों को चाहिए कि जो २ उत्तम विद्वानों से पढ़ा वा सुना है उसको औरों को नित्य पढ़ाया और उपदेश किया करें।

७२—यथा सूर्यः सर्वान् स्वे स्वे कर्मणि प्रेरयति तथाप्ता विद्वांसोऽविदुषः शास्त्रशरीर कर्मणि प्रवर्त्य सर्वाणि सुखानि संसाधयन्तु । ऋ० म० १ । सू० १२१ । मंत्र १३

मनुष्य जैसे औरों से विद्या पावे वैसे ही देवे क्योंकि विद्या दान के समान कोई और धर्म बड़ा नहीं है ।

७२—जैसे सूर्य सब को अपने २ कामों में लगाता है वैसे उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वान् जन मूर्ख जनों को शास्त्र और शरीर कर्म में प्रवृत्त करा, सब सुखों को सिद्ध करावें ।

दयानन्दोपनिषदोऽध्यापक विद्यार्थि स्वरूप निरूपणाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ।

दयानन्दोपनिषद् का अध्यापक विद्यार्थी-स्वरूपनिरूपण प्रकरण समाप्त

प्रकृति स्वरूप निरूपण

शिल्प विद्या महिमा विवरण

अश्विना यज्वरी रिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् । ऋ. म. १ । सू. ३ । मं. १ ।

१—हे विद्वांसो युष्माभिर्द्रवत्पाणी शुभस्पती पुरुभुजावश्विनौ यज्वरीरिषश्च चनस्यतम् । यौ च सर्वेषां पदार्थानां मध्ये गमनशीलौ भवतः तौ अश्विनौ । तयोर्मध्यादस्मिन्मंत्रेऽश्वि शब्देनाग्निजलेगृह्येते । कुतः । यद्ह्यस्मा जलमश्वैः स्वकीय वेगादि गुणैः रसेन सर्वं जगद्व्यश्नुते व्याप्तवदस्ति । तथाऽन्योग्निः स्वकीयैः प्रकाश वेगादिभि रश्वै सर्वं जगद्व्यश्नुते तस्मादग्निजलयोरश्वि संज्ञा जायते । तथैव स्वकीय स्वकीय गुणै र्द्यावापृथिवी आदीनां द्वन्द्वानामप्यश्वि संज्ञा भवतीति विज्ञेयम । शिल्पविद्या व्यवहारे यानादिषु युक्त्या योजितौ सर्वकलायंत्र यानधारकौ यंत्र कलाभिस्ताडितौ चेत्तदाहननेन रामयितारौ, च तुर्फरीशब्देन यानेषु शीघ्रं वेगादि गुण प्रापयितारौभवतः । अत्रेश्वरः शिल्पविद्या साधन मुपदिशति ।

यतो मनुष्याः कला यंत्र रचनेन विमानादि यानानि सम्यक् साधयित्वा जगति स्वोपकार परोपकार निष्पादनेन सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः ।

१—हे विद्या के चाहने वाले मनुष्यो तुम लोग (द्रवत्पाणी) शीघ्रवेग का निमित्त, पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्धि करने में उत्तम हेतु (शुभस्पती) शुभ गुणों के प्रकाश को पालने और (पुरु-

भुजा) अनेक खाने पीने के पदार्थों के देने में उत्तम हेतु (अश्विना) अर्थात् जल और अग्नि तथा (यज्वरी:) शिल्प विद्या का संबन्ध करने वाली (इष:) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरी की क्रियाओं को (चनस्यतं) अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया करो।

प्रकाश में रहने वाले और प्रकाश से युक्त सूर्य अग्नि जल और पृथिवी आदि पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं। उन पदार्थों में दो २ के योग को अश्वि कहते हैं। वे सब पदार्थों में प्राप्त होने वाले हैं। उनमें से यहाँ अश्वि शब्द करके अग्नि और जल का ग्रहण करना ठीक है। क्योंकि जल अपने वेगादि गुण और रस से तथा अग्नि अपने प्रकाश और वेगादि अश्वों से सब जगत् को व्याप्त होता है इसी से अग्नि और जल का अश्वि नाम है। इसी प्रकार अपने २ गुणों से पृथिवी आदि भी दो दो पदार्थ मिल कर अश्वि कहाते हैं। जब कि पूर्वोक्त अश्वि धारण और हनन करने के लिये शिल्प विद्या के व्यवहारों अर्थात् कारीगरियों के निमित्त विमान आदि सवारियों में जोड़े जाते हैं ; तब सब कलाओं के साथ उन सवारियों के धारण करने वाले तथा जब उक्त कलाओं से ताडित अर्थात् चलाए जाते हैं तब अपने चलने से उन सवारियों को चलाने वाले होते हैं। उन अश्वियों को तुर्फरी भी कहते हैं क्योंकि तुर्फरी शब्द के अर्थ से वे सवारियों में वेगादि गुणों के देने वाले समझे जाते हैं। इस प्रकार वे अश्वि कलाघरों में संयुक्त किये हुए जल से परिपूर्ण देखने योग्य महासागर हैं। उनमें अच्छी प्रकार जाने आने वाली नौका अर्थात् जहाज़ आदि सवारियों में जो मनुष्य स्थित होते हैं, उनके जाने आने के लिये होते हैं।

२—सर्वैः शिल्पिभिस्तौ (अग्निजले) तीव्र वेगवत्या मेधया पुरुषार्थेन च शिल्पविद्यासिद्धये सम्यक् सेवनीयौस्तः। ये शिल्प विद्यासिद्धिं चिकीर्षन्ति तैस्तद्विद्या हस्तक्रियाभ्यां सम्यक् प्रसिद्धी कृत्योक्ताभ्यामश्विभ्या मुपयोगः कर्तव्य इति। ऋ.म.१सू.३। मंत्र ३

३—इह जगति विद्वद्भिः सहाविद्वांसोऽविद्वद्भिः सह विद्वांस श्च प्रीत्या नित्यं वर्त्तेरन्। नैतेन कर्मणा विना शिल्पविद्या सिद्धिः प्रज्ञाबलं शोभनाः प्रजाश्च जायन्ते। ऋ. म. १ सू. १११। मं. २

४—मनुष्यै र्यदा पूर्वं वायुविद्या ततो विद्युद् विद्या तदनन्तरं जलपृथिव्यो षधिविद्याश्चैता विज्ञायंते तदा सम्यक् सुखानि प्राप्यन्ते। ऋ. म. १। सू. २३। मं. १२।

इस मन्त्र में ईश्वर ने शिल्प विद्या को सिद्ध करने का उपदेश किया है जिससे मनुष्य लोग कलायुक्त सवारियों को बना कर संसार में अपना तथा अन्य लोगों के उपकार से सब सुख पावें।

२—सब कारीगरों को चाहिये कि तीव्र वेग देने वाली कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये अन्य अश्वियों अर्थात् जल और अग्नि की अच्छी प्रकार से योजना करें। जो शिल्प विद्या को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं उन पुरुषों को चाहिए कि विद्या और हस्तक्रिया से उक्त अश्वियों को प्रसिद्ध करके उनसे उपयोग लेवें।

३—इस संसार में विद्वानों के साथ अविद्वान् और अविद्वानों के साथ विद्वान् जन प्रीति से नित्य अपना बर्ताव वरतें। इस काम के बिना शिल्पविद्यासिद्धि, उत्तम बुद्धिबल और श्रेष्ठ प्रजा जन कभी नहीं हो सकते।

४—जब मनुष्य पहले वायु विद्या, फिर विद्युद्विद्या और

५—मनुष्या यथा विद्वान्सो शूरवीरसेनया शत्रु विजयं यथा च वायुधर्षण विद्यया विद्युद्यंत्र चालनेन दूरस्थान् देशान् गत्वाऽऽग्नेयास्त्रादि सिद्धिं च कृत्वा सुखानि प्राप्नुवन्ति तथैव युष्माभिरपि विज्ञान पुरुषार्थाभ्यामेते व्यावहारिक पारमार्थिके सुखे नित्यं वर्द्धितव्ये । ऋ. म. १ । सू. २३ । मं. १२ ।

६—अहो मनुष्या यदात्रिष्वहोरात्रेषु समुद्रादिपारावारं गमिष्यन्त्यागमिष्यन्ति तदा किमपि सुखं दुर्लभं स्थास्यति, न किमपि । ऋ० मं० १ सू० ११६ । मंत्र ६ ।

७—यदा मनुष्या ईदृशेषुयानेषु स्थित्वा चालयन्ति तदा त्रिभि रहोरात्रैः सुखेन समुद्र पारमेकादशै रहोरात्रैर्भू गोलस्याभितोगन्तुं शक्नुवन्ति । एवं कुर्वन्तो विद्वांसः सुखयुक्तं पूर्णमायुः

उसके बाद पृथिवी विद्या के साथ ओषधि विद्या को जानते हैं तभी सुख होता है ।

५—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग शूरवीरों की सेना से शत्रुओं के विजय वा जैसे पवनों के घिसाने से बिजली के यंत्र को चला कर दूरस्थ देशों को जा वा आग्नेयादि अस्त्रों की सिद्धि को करके सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुमको भी विज्ञान वा पुरुषार्थ करके इनसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को निरन्तर बढ़ाना चाहिए ।

६—आश्चर्य इस बात का है कि जब मनुष्य तीन दिन रात में समुद्र आदि स्थानों के आवारपार जावें आवेंगे तो क्या कुछ भी सुख दुर्लभ रहेगा । किन्तु कुछ भी नहीं ।

७—जब मनुष्य यानों में बैठ और उनको चलाते हैं तब तीन दिन और तीन रात्रियों में सुख से समुद्र के पार तथा ग्यारह

प्राप्य दु:खानि दूरीकृत्य शत्रून् विजित्य चक्रवर्तिराज्यभागिनो भवन्तीति ऋ० म० १ सू० ३४ मंत्र ११ ।

८—मनुष्यैर्यथा रात्रि दिवसयोः क्रमेण संगतिर्वर्तते तथैव यंत्र कलानां क्रमेण संगति: कार्या: । यथा विद्वांसः पृथिवी विकाराणां यानकला कील यंत्रादिकं रचयित्वा तेषां भ्रामणेन तत्रजलाग्न्यादि संप्रयोगेण भू समुद्राकाश गमनार्थानि यानानि साध्नुवंति । तथैवं मयापि साधनीयानि । नैवैतद्विद्यया विना दारिद्यक्षयः श्रीवृद्धिश्च कस्यापि संभवति तस्मादेत द्विद्यायां सर्वैर्मनुष्यै रत्यन्तः प्रयत्नः कर्तव्यः । यथा मनुष्या हेमंततौं शरीरे वस्त्राणि सबध्नन्ति तथैव सर्वतः कील यंत्र कलादिभिः यानानि संबन्धनीयानि । ऋ० म० १ स० ३४ मंत्र १

दिन और ग्यारह रात्रियों में ब्रह्माण्ड के चारों ओर जाने को समर्थ हो सकते हैं । इसी प्रकार करते हुए विद्वान् लोग सुख युक्त पूर्ण आयु को प्राप्त हो दु:खों को दूर कर और शत्रुओं को जीत कर चक्रवर्ती राज्य भोगने वाले होते हैं ।

८—मनुष्यों को चाहिए जैसे रात्रि वा दिन की क्रम से संगति होती हैं वैसे संगति करें। जैसे विद्वान् लोग पृथिवी विकारों के यान कलाकील और यंत्रादिकों को रचकर उनके घुमाने और उसमें अग्न्यादि के संयोग से भूमि समुद्र वा आकाश में जाने जाने के लिये यानों को सिद्ध करते हैं, वैसे ही मुझको भी विमानादि यान सिद्ध करने चाहिए। क्योंकि इस विद्या के विना किसी के दारिद्य का नाश वा लक्ष्मी की वृद्धि कभी नही हो सकती। इससे इस विद्या में सब मनुष्यों को अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये। जैसे मनुष्य लोग हेमन्त ऋतु में वस्त्रों को अच्छे

९—भूमि समुद्रान्तरिक्षगमनं चिकीर्षुभिर्मनुष्यै स्त्रिचक्राग्न्यागारस्तम्भ युक्तानिविमानादीनि यानानि रचयित्वा तत्रस्थित्वैकस्मिन् दिन एकस्यां रात्रौ भूगोल समुद्रान्तरिक्ष मार्गेण त्रिवारं गन्तु शक्येरन्। तत्रेदृशास्त्रयः स्कंभा रचनीया यत्र सर्वे कलावयवाः कोष्ठलोष्ठादिस्तम्भवयवा वा स्थितिं प्राप्नुयुः। तत्राग्नि जले संप्रयोज्य चालनीयानि। नैतैर्विना कश्चित्सद्योभूमौ समुद्रेऽन्तरिक्षे वा गन्तु मागन्तुं च शक्नोति तस्मा देतेषां सिद्धये विशिष्टाः प्रयत्नाः कार्याइति। म० १ सू० ३३ मंत्र २

१०—शिल्पविद्या विद्विद्वांसो यंत्रैर्यानंचालयितारश्च प्रतिदिनं शिल्पविद्यया यानानि निष्पाद्य त्रिधा शरीरात्ममनः सुखायधना-

---

प्रकार धारण करते हैं वैसे ही सब प्रकार कील कला यंत्रादिकों से यानों को संयुक्त रखना चाहिये।

९—भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को योग्य है कि तीन २ चक्रयुक्त अग्नि के घर और स्तम्भ युक्त यान को रचकर उसमें बैठ कर एक दिन रात में भूगोल समुद्र अन्तरिक्ष मार्ग से तीन २ वार जाने को समर्थ हो सकें। उस यान में इस प्रकार के स्तंभ रचने चाहिये कि जिसमें कलावयव अर्थात् काष्ठलोष्ठ आदि खंभों के अवयव स्थित हों फिर वहां अग्नि जल का संप्रयोग कर चलावें। क्योंकि इनके विना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि समुद्र अन्तरिक्ष में जाने आने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इनकी सिद्धि के लिये सब मनुष्यों बड़े २ यत्न अवश्य करने चाहिए।

१०—शिल्प विद्या को जानने और कला यंत्रों से यान को चलाने वाले प्रतिदिन शिल्प विद्या से यानों को सिद्ध करके तीन

धनेकोत्तमान् पदार्थानर्जयित्वासर्वान् प्राणिनः सुखयन्तु । येनाहो रात्रे सर्वे पुरुषार्थेनेमां विद्यामुन्नीयालस्यंत्यक्त्वोत्साहेन तद्रक्षणे नित्यंप्रयतेरन्निति ।

११—ये नित्याः पदार्थाः सन्ति तेषां गुणा अपि नित्याभवितु मर्हन्ति। ये शरीरस्था बहिस्थाः प्राणा विद्युच्च सम्यक् सेवितास्चेतन हेतवो भूत्वा सुखप्रदाभवन्ति ते कथं न सम्प्रयोक्तव्यौ । ऋ० म० १ सू० २ मंत्र ६

१२—मनुष्य जन्म प्राप्य वेदादि द्वारा सर्वाविद्याः प्रत्यक्षी कार्याः । नैव कस्यचिद् द्रव्यस्य गुणकर्म स्वभावानां प्रत्यक्षीकरणेन विना, विद्या सफला भवतीति वेदितव्यम् । मण्ड १ सू० २२ मंत्र १०

१३—द्यौरिति प्रकाशवतांलोकाना मुपलक्षणं पृथिवीत्य

प्रकार अर्थात् शारीरिक आत्मिक और मानसिक सुख के लिये धन आदि अनेक उत्तम पदार्थों को इकट्ठा कर सब प्राणियों को सुखयुक्त करें जिससे दिन रात में सब लोग अपने पुरुषार्थ से इस विद्या की उन्नति कर और आलस्य को छोड़ के उत्साह से उसकी रक्षा में निरन्तर यत्न करें। ऋ० म० १ । सू० ३४ । मंत्र ३ ।

११—जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण भी नित्य होते हैं जो शरीर में वा बाहर रहने वाले प्राण वायु तथा बिजुली हैं वे अच्छी प्रकार सेवन किये हुए, चेतनता कराने वाले होकर, सुख देने वाले होते हैं ।

१२—विद्वानों को इस संसार में मनुष्य जन्म पाकर वेद द्वारा सब विद्या प्रत्यक्ष करनी चाहिए क्योंकि कोई भी विद्या पदार्थों के गुण और स्वभाव को प्रत्यक्ष किये बिना सफल नहीं हो सकती ।

प्रकाशवतांच मनुष्यैरेताभ्यां प्रयत्नेन सर्वानुपकारान् गृहीत्वा पूर्णानि सुखानि संपादनीयानि । ऋ० मं० १ सू० २२ मंत्र १३

१४—विद्वद्भिः पृथिव्यादि पदार्थैर्यानानि रचयित्वा तत्र कलासु जलाग्नि प्रयोगेण भूसमुद्रान्तरिक्षेषु गन्तव्य मागन्तव्यं चेति । ऋ० म० १ सू० २२ मंत्र १४

१५—मनुष्यैर्भूगर्भविद्यया गुणैर्विदितेयं भूमिरेव मूर्तिमतां निवास स्थान मनेक सुख हेतुः सती बहुरत्नप्रदाभवतीतिवेद्यम् मण्ड० १ । सू० २२ मंत्र १५

१६—नैव सूर्यवायुभ्यां विना जल ज्योतिषोरुत्पत्तेः संभवोस्ति नैव चेश्वरोत्पादनेन विना सूर्यवायो रुत्पत्तिर्भवितुं शक्या । न

१३—द्यौ यह नाम प्रकाशमान लोकों का उपलक्षण अर्थात् जो जिसका नाम उच्चारण किया है, वह उसके समतुल्य सब पदार्थों के ग्रहण करने में होता है। तथा (पृथिवी)यह विना प्रकाश वाले लोकों का है। मनुष्यों को इनसे प्रयत्न के साथ सब उपकारों को ग्रहण करके उत्तम सुखों को सिद्ध करना चाहिये।

१४—विद्वानों को पृथिवी आदि पदार्थों से विमान आदि यान बनाकर उनकी कलाओं में जल और अग्नि के प्रयोग से भूमि समुद्र और आकाश में आना जाना चाहिए।

१५—मनुष्य को योग्य है भूगर्भविद्या द्वारा ऐसा ज्ञान करें कि यह भूमि ही सब मूर्तिमान् पदार्थों के रहने की जगह और अनेक प्रकार के सुखों को कराने वाली और बहुत रत्नों को प्राप्त कराने वाली होती है।

१६—न सूर्य और वायु के विना जल और ज्योति अर्थात् प्रकाश की योग्यता है। न ईश्वर के उत्पादन किये विना सूर्य वायु

चैताभ्यां विना मनुष्याणां व्यवहारसिद्धिर्भवितु मर्हतीति ।
ऋ०म. १ । सू. २३ । मन्त्र १४

१७—कृषीवलो भूमिं चर्कृषद्धान्यादि प्राप्त्यर्थं पुनः पुनर्भूमिं कर्षतीवायमीश्वरो मह्य मिभुभिस्सह वसन्तादीन् युक्तान गोभिः सह यव मनुसेषिधत् पुनः पुन रनुगतं प्रापयेत्तस्मादहं तमेवेष्टं मन्ये । यथा सूर्यः कृषीवलोवा किरणैर्हलादिभिर्वा पुनः पुनर्भूमि माकृष्य कर्षित्वा समुष्य धान्यादीनि प्राप्य वसन्तादीन् षड् ऋतून् सुख संयुक्तान् करोति तथेश्वरोप्यनुसमयं सर्वेभ्यो जीवेभ्यः कर्मानुसारेण रसोत्पादन विभजनेनर्तून सुखसंपादकान् करोति । म. १ । सू. २३ । मंत्र१५

की उत्पत्ति का संभव, और न इनके विना मनुष्यों के व्यवहारों की सिद्धि हो सकती है ।

१७—जैसे खेती करने वाला मनुष्य हरेक अन्न की सिद्धि के लिये भूमि को (चर्कृषत्) बार बार जोतता है (न) वैसे (सः) वह ईश्वर (मह्यम्) जो मैं धर्मात्मा पुरुषार्थी हूं उसके लिये (इन्द्रेभिः) स्निग्ध मनोहर पदार्थों और बसन्त आदि (षट्) छः (ऋतून्) ऋतुओं को (युस्मान्) (गोभिः) गौ हाथी और घोड़े आदि पशुओं के साथ सुख संयुक्त और (यवम्) यव आदि अन्न को (अनुषेति धत्) बारम्बार हमारे अनुकूल प्राप्त करे इससे मैं उसी को इष्ट देव मानता हूं ।

जैसे सूर्य वा खेती करने वाला किरण वा हल आदि से बारम्बार भूमि को आकर्षित वा खन और धान्य आदि की प्राप्ति कर सचिक्कन कर पदार्थों के सेवन के साथ बसन्त आदि छः ऋतुओं को सुखों से संयुक्त करता है । वैसे ईश्वर भी समय के

अनुकूल सब जीवों को कर्मों के अनुसार रस को उत्पन्न व ऋतुओं के विभाग से उक्त ऋतुओं को सुख देने वाली करता है।

१८—न चैवायं सूर्योरूप रहितेनान्तरिक्षं प्रकाशयितुं शक्नोति तस्याद्यान्यस्योपर्यधःस्थानि ज्योतींषि संति तान्येव मेघस्य निमित्तानि ये जल परमाणवः किरणस्थाः संति यथा नैव तेऽती-न्द्रियत्वाद् दृश्यन्ते एवं वाय्वग्नि पृथिव्यादीनामपि सूक्ष्मा अवयवा अन्तरिक्षस्था वर्तमाना अपि न दृश्यंत इति।

ऋ. म. १ सू. । २४ । मं. ७ ।

१९—यः परमेश्वरः खलु यस्य महतः सूर्यलोकस्य भ्रमणार्थं महतीं कक्षां निर्मितवान् यो वायुनेन्धनेन प्रदीप्यते य इमे सर्वेलोका अन्तरिक्षपरिधयः सन्ति न च कस्यचिल्लोकस्य केनचिल्लोकान्तरेण सह संगोऽस्ति किन्तु सर्वेऽन्तरिक्षस्थाः सन्तः स्वं स्वं परिधिं प्रति परिभ्रमन्त्येते सर्वे यस्येश्वरस्य वायो र्वाकर्षण धारणाभ्यां स्वं स्वं

१८—जिससे यह सूर्य रूप के न होने से अन्तरिक्ष का प्रकाश नहीं कर सकता इससे जो ऊपरली वा निचली किरणें हैं वे ही मेघ की निमित्त हैं जो उनमें जल के परमाणु रहते तो हैं परन्तु ये अति सूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार वायु अग्नि और पृथिवी आदि के भी अति सूक्ष्म अवयव अन्तरिक्ष में रहते तो अवश्य हैं, परन्तु वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते।

१९—जिस परमेश्वर ने निश्चय के साथ जिस सबसे बड़े सूर्यलोक के लिये बड़ी सी कक्षा अर्थात् उसके घूमने का मार्ग बनाया है, जो इसको वायुरूपी इंधन से प्रदीप्त करता और जो सब लोक अन्तरिक्ष में अपनी-अपनी परिधि युक्त हैं कि किसी लोक का किसी लोकान्तर के साथ संग (टाकरा) नहीं है किन्तु सब अन्त-

परिधिं विहायेतस्ततश्चलितुं न शक्नुवन्ति नैव यस्मात्कश्चिदन्य एषां धर्तार्थोऽस्ति यथा परमेश्वरोऽधार्मिकस्य वक्तुर्हृदयस्य विदारकोऽस्ति (हृदयाविधः) तथा प्राणोऽपि रोगाविष्टो हृदयस्य विदारकोऽस्ति स सर्वैर्मनुष्यैः कथं नोपासनीय उपयोजनीयो भवेदिति बोध्यम् । ऋ. म. १ सू. २४ मं. ९ ।

२०—यदा कश्चित्कंचित्प्रति पृच्छेदिमे नक्षत्रलोकाः केन रचिताः केन धारिता रात्रौ दृश्यन्ते एते क्व गच्छन्ति तदैतस्योत्तर मेवं दद्यात् । येनेमे सर्वे लोकावरुणेनेश्वरेण रचिताः धारिताः सन्ति । एतेषां मध्ये स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु सूर्यस्यैव प्रकाशेन प्रकाशिता भवन्ति नैवेते क्वापि गच्छन्ति किन्तु दिवस आव्रियमाणा न दृश्यन्ते

रिक्ष में ठहरे हुए, अपनी परिधि पर चारों ओर घूमा करते हैं और जो आपस में जिस ईश्वर और वायु के आकर्षण और धारण शक्ति से अपनी २ परिधि को छोड़कर इधर उधर चलने को समर्थ नहीं हो सकते, तथा जिस परमेश्वर और वायु के बिना अन्य कोई भी इनका धारण करने वाला नहीं है। जैसे परमेश्वर मिथ्यावादी अधर्म करने वाले से पृथक् है वैसे प्राण भी हृदय के विदीर्ण करने वाले रोग से अलग है उनकी उपासना वा कार्यों में योजना सब मनुष्य क्यों न करें ?

२०—जब कोई किसी से पूछे कि ये नक्षत्र लोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखते तथा दिन में कहाँ जाते हैं। इनके उत्तर में कहे कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं। इनमें आप ही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं और वे कहीं नहीं जाते। किन्तु दिन में ढँपे हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की

रात्रौ च सूर्य किरणैः प्रकाशमाना दृश्यन्ते तान्येतानि धन्यवादा र्हाणि कर्माणि परमेश्वरस्यैव सन्तीति वेद्यम्।

ऋ० मण्ड १। सू० २५। ७ मंत्र।

२१—यः समुद्रियो मनुष्योऽन्तरिक्षेण पततां वीनां पदं वेद, समुद्रे गच्छन्त्या नावश्च पदं वेद, स शिल्पविद्या सिद्धिं कर्तुं शक्नोतिनेतरः।

या ईश्वरेण वेदेष्वन्तरिक्ष भूसमुद्रेषु गमनाय यानानां विद्या उपदिष्टाः सन्ति ताः साधितुं यः पूर्ण विद्या शिक्षा हस्तक्रि.। कौशलेषु विचक्षण, इच्छति स एवैतत्कार्यकरणे समर्थो भवतीति।

ऋ० मण्ड १। सू० २५। मंत्र ८।

२२—यो धृतव्रतो मनुष्यः प्रजावतो द्वादश मासान् वेद तथा योऽत्र त्रयोदश मास उपजायते तमपि वेद स सर्व कालावयवान् विदित्वोपकारी भवति। ऋ० मण्ड० १। सू० २५। मंत्र ६

किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं। ये सब धन्यवाद देने योग्य ईश्वर के ही कर्म हैं, ऐसा सब सज्जनों को जानना चाहिए।

२१—जो समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष जलमय प्रसिद्ध समुद्र में अपने पुरुषार्थ से युक्त विद्वान् मनुष्य (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से(पततां)जो जाने आने वाले(वीनाम्)विमान सब लोक वा पक्षियों के और समुद्र में जाने वाली (नावः) नौकाओं के (पदम्) रचन चालन ज्ञान और मार्ग को (वेद) जानता है वह शिल्प विद्या की सिद्धि के करने को समर्थ हो सकता है; अन्य नहीं।

जो ईश्वर ने वेदों में अन्तरिक्ष भू और समुद्र में जाने आने वाले यानों की विद्या का उपदेश किया है उनको सिद्ध करने को जो पूर्ण विद्या शिक्षा और हस्तक्रियाओं के कला कौशल में कुशल मनुष्य होता है, वही बनाने में समर्थ हो सकता है।

यथा सर्वज्ञत्वात् परमेश्वरः सर्वाधिष्ठानं कालचक्रं विजानाति तथा लोकानां कालस्य च महिमानं विदित्वा नैव कदाचिदस्यैक कणः क्षणोऽपि व्यर्थो नेय इति । ऋ० मण्ड १ । सू० २५ । मंत्र १० ।

२३ यो मनुष्य अश्वस्योरोर्बृहतो वातस्य वर्तनिं वेद जानीयात् । येऽत्र पदार्था अध्यासते तेषां च वर्तनिं वेद स खलु भूखगोल गुणविज्जायते ।

यो मनुष्योऽग्न्यादीनां पदार्थानां मध्ये परिमाणतो गुणतश्च

२२—जो सत्य नियम विद्या और बल को धारण करने वाला विद्वान् मनुष्य (प्रजावतः) जिनमें नाना प्रकार के संसारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं (द्वादश) बारह (मासाः) महीनों और जो कि (उपजायते) उनमें अधिक मास अर्थात् तेरहवां महीना उत्पन्न होता है उसको जानता है वह काल के सब अवयवों को जान कर उपकार करने वाला होता है ।

जो परमेश्वर सर्वज्ञ होने से सब लोक व काल की व्यवस्था को जानता है वैसे मनुष्यों को सब लोक तथा काल की महिमा की व्यवस्था को जानकर इसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए ।

२३—जो मनुष्य (अश्वस्य) सब जगह जाने आने (उरोः) अत्यन्त गुणवान् (बृहतः) बड़े और अत्यन्त बलयुक्त (वातस्य) वायु के (वर्तनिम्) मार्ग को (वेद) जानता है (ये) और जो पदार्थ इस में (अध्यासते) इस वायु के आधार से स्थित हैं उनके भी (वर्तनिम्) मार्ग को (वेद) जाने वह भूगोल या खगोल के गुणों का जानने वाला होता है ।

जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों में परिमाण व गुणों से बड़ा,

महान् सर्वाधारो वायुर्वर्तते तस्य कारणमुत्पत्तिं गमनागमनयोर्मार्गे ये तत्र स्थूल सूक्ष्माः पदार्थाः वर्तन्ते तानपि यथार्थतया विदित्वे तेभ्य उपकारं गृहीत्वा ग्राहयित्वा कृतकृत्यो भवेत्स इह गण्योविद्वान् भवतीति वेद्यम्। ऋ० मण्ड १। सू० २५। मंत्र ६।

२४—मनुष्यै यानि महान्त्यग्नि वाष्य जल कला यंत्रैः सम्यक् चालितानि नौकायानानि निर्विघ्नतया समुद्रान्तं शीघ्रं गमयन्ति। नैवेदृशैर्विना नियतेन कालेनाभीष्टं स्थानान्तरं गन्तुं शक्यत इति।
ऋ. म. १। सू. ३०। मंत्र १८।

२५—हे अश्विनौ विद्या व्याप्तौ युवां यथेक मध्न्यस्य रथस्य मूर्द्धन्यपरं द्वितीयं च चक्रमधोरचयेतां तदैते समुद्र माकाशं वा नियेमथुर्नियच्छथ एताभ्यां द्वाभ्यां युक्तं यानं यथेष्टे मार्गे ईयते प्रापयति। ऋ० मण्ड० १। सू० ३०। मंत्र १६

सब मूर्ति वाले पदार्थों का धारण करने वाला वायु है, उसका कारण अर्थात् उत्पत्ति और जाने आने के मार्ग और जो इसमें स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ ठहरे हैं उनको भी यथार्थता से जानकर इनसे अनेक कार्य सिद्ध कर कराके सब प्रयोजनों को सिद्ध कर लेता है, वह विद्वानों में गणनीय विद्वान् होता है।

२४—मनुष्यों की जो अग्नि वायु और जलयुक्त कलायन्त्रों से सिद्ध की हुई नाव हैं वे निस्संदेह समुद्र के अन्त को जल्दी पहुँचाती हैं ऐसी २ नावों के बिना अभीष्ट समय में चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना नहीं हो सकता है।

२५—हे अश्विनौ विद्यायुक्त शिल्पि लोगो तुम दोनो (अघ्न्यस्य) जो विनाश करने योग्य नहीं है उस (रथस्य) विमान आदि यान के (मूर्द्धनि) उत्तम अङ्ग अग्रभाग में जो एक और (अन्यत्) दूसरा नीचे की ओर कलायन्त्र बनाओ तो वे दो चक्र समुद्र वा (द्याम्)

शिल्पिभिः शीघ्रगमनार्थं यद्यद्यानं चिकीर्ष्यते तस्य तस्याग्रभागएकं कलायंत्र चक्रं सर्वकलाभ्रमणार्थं द्वितीय मपरभागे च रचनीयं तद्रचनेन जलाग्न्यादि प्रयोज्यैतेन यानेन ससंभाराः शिल्पिनो भूमिसमुद्रान्तरिक्ष मार्गेण सुखेन गन्तुं शक्नुवन्तीति निश्चयः। ऋ. म. १। सू. ३०। मंत्र १६।

२६—को मनुष्यः कालस्य सूक्ष्मां व्यर्थगमनानर्हां गतिं वेद। नहि सर्वो मनुष्यः पुरुषार्थारंभस्य सुखाख्यामुपसंयथावज्जानाति तस्मात्सर्वे मनुष्याः प्रातरुत्थाय यावन्न सुषुपुस्तावदेकं क्षणमपि कालस्य व्यर्थं न नयेयुः। एवं जानन्तो जनाः सर्वकालं सुखं भोक्तुं शक्नुवन्तिनेतरेऽलसाः। म० १। सू० ३०। मंत्र २०।

आकाश पर भी (नियेमथुः) देश देशान्तर में जाने के वास्ते बहुत अच्छे ही इन दोनों चक्रों से जुड़ा हुआ रथ जहाँ चाहो वहाँ (ईयते) पहुँचाने वाला होता है।

शिल्पि विद्वानों को योग्य है कि जो शीघ्र जाने आने के लिये रथ बनाया चाहें तो उसके आगे एक २ कलायंत्र युक्त चक्र, तथा सब कलाओं के घूमने के लिये दूसरा चक्र, नीचे भाग में रच के उसमें यत्न के साथ जल और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करें। इस प्रकार रचे हुए यान भार सहित शिल्पी विद्वान् लोगों को भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष मार्ग से सुख पूर्वक देशान्तर को प्राप्त कराते हैं।

२६—कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्मगति, जो व्यर्थ खोने के योग्य (नहीं) है, उसको जाने। जो पुरुषार्थ के आरम्भ का आदि समय प्रातःकाल है उसमें निश्चय से प्रातःकाल उठ कर जब तक सोने का समय न हो एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे। इस प्रकार

२७—हे विद्वन् यथावयं या चित्रेऽरुण्यल्कुतता रक्त गुणाढ्यास्ति तामन्तादाभिमुख्यात् समीपस्थाद्देशादापराकाद् दूरदेशाच्चाश्वेनाम-न्महि तथा त्वमपि विजानीहि ।

ये मनुष्या भूत भविष्यद् वर्तमानान् कालान् यथावदुपयोजितुं जानन्ति तेषां पुरुषार्थेन दूरस्थ समीपस्थानि सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्ति । अतो नैव केनापि मनुष्येण क्षण मात्रोपि व्यर्थः कालः कदचिन्नेय इति । ऋ० मं० १।सू० ३०। मंत्र २१ ।

२८—वृत्रस्य द्वेमातरौ वर्तेते एकापृथिवी द्वितीयान्तरिक्षं चैतयोर्द्वयोः सकाशाद् एव वृत्रस्योत्पत्तेः । यथा काचिद्गौः स्व वत्सेन सहवर्तते तथैव यथाजल समूहो मेघ उपरिगच्छति तदाऽन्त

समय के सार्थपन को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं किन्तु आलस्य करने वाले नहीं ।

२७—हे काल विद्यावित् जन जैसे समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो (चित्रे) आश्चर्यरूप (अरुषि) कुछ एक लाल गुण युक्त उषा है उसको (आ अन्तात्) प्रत्यक्ष समीप वा (अ.परा-कात्) एक नियत किये हुए दूर देश से (अश्वेन) नित्य शिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठ के जाने आने वाले के समान जानें वैसे इसको तू भी जान ।

जो मनुष्य भूत भविष्य और वर्तमान काल का यथा योग्य उपयोग लेने को जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं इससे किसी मनुष्य को कभी क्षण भर भी व्यर्थ काल न खोना चाहिए ।

२८—मेघ की दो माता हैं एक पृथिवी दूसरी अन्तरिक्ष अर्थात् इन्हीं दोनों से मेघ उत्पन्न होता है । जैसे कोई गाय अपने बछड़े

रिक्षाख्या माता स्वपुत्रेण सहशयाना इव दृश्यते। यदा च स वृष्टि द्वारा भूमि मागच्छति तदा भूमिस्तेन स्वपुत्रेण सह शयानेव दृश्यते। अस्य मेघस्य पितृस्थानी सूर्योऽस्ति तस्योत्पादकत्वात्। अस्यहि भूम्यन्तरिक्षे द्वे स्त्रियाविवर्तेते यदा स जलमाकृष्य वायु द्वारान्तरिक्षे प्रक्षिपति तदा सपुत्रो मेघो वृद्धिंप्राप्य प्रमत्तइवोन्नतो भवति, सूर्य स्तमाहत्य भूमौ निपातयत्येवमयं वृत्र: कदचिदुपरिस्थ: कदाचिदधस्थो भवति तथैव राज्यपुरुषै प्रजाकण्टकान् शत्रून्तिस्ततः प्रक्षिप्य प्रजा: पालनीया: । ऋ. म. १ सू. ३२। म. ६।

२६—हे अश्विना युवं युवामस्मे अस्माकं वर्तिर्मार्गं त्रिर्यातं तथा सुप्रव्येऽनुव्रते जने त्रिर्यातं त्रिवारं प्रापयतम्। शिष्याय त्रेधा हस्त क्रिया रक्षण चालन ज्ञानाढ्यं शिक्षन्तध्यापक इवास्मान् त्रिःशिक्षत

के साथ रहती है वैसे ही जब जल का समूह मेघ अन्तरिक्ष में जाकर ठहरता है तब उसकी माता अन्तरिक्ष अपने पुत्र मेघ के साथ और जब वह वर्षा से भूमि को आता है तब भूमि उस अपने पुत्र मेघ के साथ सोती सी दीखती है। इस मेघ का उत्पन्न करने वाला सूर्य है। इसलिये वह पिता के स्थान में समझा जाता है। उस सूर्य की भूमि वा अन्तरिक्ष दो स्त्री के समान हैं। वह पदार्थों से जल को वायु के द्वारा खींच कर जब अन्तरिक्ष में चढ़ाता है। तब वह पुत्र मेघ प्रमत्त के सदृश बढ़कर उठता है और सूर्य के प्रकाश को ढकेलता है तब सूर्य उसको मार कर भूमि में गिरा देता है। अर्थात् भूमि में वीर्य छोड़ने के समान जल पहुँचाता है इसी प्रकार वह मेघ कभी ऊपर कभी नीचे होता है। वैसे ही राज पुरुषों को उचित है कि कंटकरूप शत्रुओं को इधर उधर निर्बीज करके प्रजा का पालन करें।

मस्मान्नांद्यं त्रिर्वहतं त्रिवारं प्रापयतम्। यथा नदी तड़ाग समुद्रादयो जलाशया मेघस्य सकाशादुत्तराणि जलानि व्याप्नुवन्ति तथाऽस्मान् पृक्षो विद्या संपर्कं त्रिःपिन्वतम्। शिल्प विद्याविदां योग्यतास्ति विद्यां चिकीर्षून् अनुकूलान् बुद्धिमतो जनान् हस्तक्रिया विद्या पाठयित्वा पुनः पुनः सुशिक्ष्य कार्य साधन समर्थान् संपादयेयुः। ते चैतां संपाद्य यथा वच्चातुर्य पुरुषार्थाभ्यां वहून सुखोपकारान् गृह्णीयुः। ऋ. म. १। सू. ३४। म. ४

हे (अश्विना) विद्या देने वा ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्यों (युवम्) तुम दोनों (अस्मे) हम लोगों के (वर्तिः) मार्ग को (त्रिः) तीन बार (यातं) प्राप्त हुआ करो। तथा (सुप्राव्ये) अच्छी प्रकार प्रवेश करने योग्य (अनुव्रते) जिसके अनुकूल सत्याचरण व्रत है उस (जने) बुद्धि के उत्पादन करने वाले मनुष्य के निमित्त (त्रिः) तीन बार प्राप्त हूजिये और शिष्य के लिये (त्रेधेव) तीन प्रकार अर्थात् हस्त क्रिया, रक्षा और यान चलन के ज्ञान को शिक्षा करते हुए अध्यापक के समान (अस्मे) हम लोगों को (त्रिः) तीन वार (शिक्षतं) शिक्षा और (नांद्यम् नन्दयितुं समर्धयितुं योग्यं शिल्प-ज्ञानं) समृद्धि होने योग्य शिल्पज्ञान को (त्रिः) तीन वार (वहतम्) प्राप्त करो और (अक्षरेव) जैसे नदी तालाब और समुद्र आदि जलाशय मेघ के सकाश से जल को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोगों को (पृक्षः) विद्या संपर्क को (त्रिः) तीन वार (पिन्वतम्) प्राप्त करो।

शिल्प विद्या के जानने वाले मनुष्यों को योग्य है कि विद्या की इच्छा करने वाले अनुकूल बुद्धिमान् मनुष्यों को पदार्थ विद्या पढ़ा और उत्तम उत्तम शिक्षा वार २ देकर कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ करें और उनको भी चाहिए कि इस विद्या को संपादन

३०—मनुष्यै रश्विनोः सकाशाच्छिल्प कार्याणि निर्वर्त्यबुद्धिं वर्धयित्वा सौभाग्य मुत्तमान्नादीनि च प्रापणीयानि तत्सिद्धयानेषु स्थित्वा देशदेशान्तरान् गत्वा व्यवहारेण धनं प्राप्य सदानं दयितव्यम् । ऋ. म. १ । सू. ३४ । मंत्र ५ ।

३१—हे शुभस्पती अश्विनौ युवांनोऽस्मभ्य मद्भयो दिव्यानि भेषजौषधानि त्रिर्दत्तं ॐ इति वितर्के पार्थिवानि भेषजौषधानि त्रिर्दत्तं ममकाय सूनवे त्रिर्वहतं प्रापयतम् । ऋ. म. १ । सू. ३४ । मं. ६ ।

करके यथावत् चतुराई और पुरुषार्थ से सुखों के उपकारों को ग्रहण करें ।

३०—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि भूमि के अवलम्ब से शिल्प कार्यों को सिद्ध और बुद्धि बढ़ा कर सौभाग्य और उत्तम अन्न पदार्थों को प्राप्त हो तथा इस सब सामग्री से सिद्ध हुए यानों में बैठ के देशदेशान्तरों को जा आ और व्यवहार द्वारा धन को बढ़ा कर सब काल में आनन्द से रहें ।

३१—हे कल्याण कारक मनुष्यों के कर्मों की पालना करने और (अश्विना) विद्या की ज्योति को बढ़ाने वाले शिल्पि लोगो आप दोनों (नः) हम लोगों के लिये (अद्भ्यः) जलों से (दिव्यानि) विद्यादि उत्तम गुण प्रकाश करने वाले (भेषजा) रसमय सोमादि औषधियों को (त्रः) तीन ताप निवारणार्थ (दत्तम) दीजिये । (उं) और पृथिवी के विकारयुक्त औषधी (पार्थिवानि) (त्रिः) तीन प्रकार से दीजिये और (ममकाय) मेरे (सूनवे) औरस अथवा विद्यापुत्र के लिये (शंयोः) सुख तथा (ओमानम्) विद्या में प्रवेश और क्रिया के बोध कराने वाले रक्षणीय व्यवहारों को (त्रिः) तीन वार दीजिये और (त्रिधातु) लोहा तामा पीतल इन तीन धातुओं के

मनुष्यै जँल पृथिव्योर्मध्ये यानि रोगनाशकान्यौषधानि संति- तानि त्रिविध ताप निवारणाय भोक्तव्यान्यनेकधातुकाष्ठमयं गृहा कारं यानं रचयित्वा तत्त्रोत्तमानियवादीन्यौषधानि संस्थाप्याग्निगृहेऽग्नि पार्थिवैरिंधनैः प्रज्वाल्यापः स्थापयित्वा बाष्पबलेन यानानि चालयित्वा व्यवहारार्थं देशदेशान्तरं गत्वा ततआगत्य सद्यः स्वदेशः प्राप्तव्य एवंकृते महांति सुखानि प्राप्तानि भवन्तीति ।

३२—ऐहिक सुख समीप्सवो जना. यथा जीवोऽन्तरिक्षादिमार्गैं सद्यः शरीरान्तरं गच्छति यथा च वायुः सद्यो गच्छति तथैव पृथिव्यादि विकारैः कलायंत्र युक्तानि यानानि रचयित्वा तत्र जलाग्न्यादीन् संप्रयोज्याभीष्टान् दूरदेशान् सद्यः प्राप्नुयुः । नैतेन कर्मणा विना सांसारिक सुखं भवितुमर्हति ऋ. म.१सू. ३४।मं. ७ ।

सहित भू जल और अन्तरिक्ष में जाने वाले (शर्म) गृह स्वरूप यान को मेरे पुत्र के लिये (त्रिः) तीन बार पहुँचाइए ।

मनुष्यों को चाहिए कि जो जल और पृथिवी में उत्पन्न हुई रोग नष्ट करने वाली औषधी हैं उनका एक दिन में तीन बार भोजन किया करें और अनेक धातुओं से युक्त काष्ठमय घर के समान यान को बना उसमें उत्तम २ जव आदि औषधी स्थापन कर अग्नि के घर में अग्नि को, काष्ठों से प्रज्वलित जल के घर में जलों को स्थापन कर, भाफ के बल से यानों को चला व्यवहार के लिये देश देशान्तरों को और वहाँ से आकर जल्दी अपने देश को प्राप्त हों। इस प्रकार करने से बड़े २ सुख प्राप्त होते हैं ।

३२—संसार सुख की इच्छा करने वाले पुरुष, जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि मार्गों से दूसरे शरीरों को शीघ्र प्राप्त होता और जैसे वायु शीघ्र चलता है वैसे ही पृथिव्यादि विकारों से कलायंत्र युक्त यानों को रच और उनमें अग्नि जल आदि का अच्छे प्रकार

३३—मनुष्यै र्वायु सूर्ययोश्छेदना कर्षण वृष्ट्युद्भावकैर्गुणैः नद्यः (सिन्धुभिः सप्त मातृभिः—नदीभिः सप्तार्थान पृथिव्यग्नि सूर्य वायु विद्यु दुदकावकाशा मातरो जनका यासां ताभिः) चलन्ति हुतं द्रव्यं दुर्गन्धादि दोषान्निवार्य हितं सर्व दुःख रहितं सुखं साधयति यतोऽहर्निशं सुखं वर्धते येन विना कश्चित्प्राणी जीवितुं न शक्नोति तस्मादेतच्छोधनार्थं यज्ञाख्यं कर्म नित्यं कर्तव्य मिति ।

ऋ. म. १ । सू० ३४ । मंत्र ८ ।

३४—हे नासत्या वश्विनौ शिल्पिनौ युवां येन विमानादिया नेन यज्ञं संगन्तव्यं मार्गं करोपयोथा दूर देश स्थं स्थानं सामीप्यवत्प्रापयथाः तस्य च रासमस्थ वाजिन स्त्रिवृतो रथस्य मध्ये क त्रीणि चक्राणि कर्तव्यानि क चास्मिन विमानादियाने ये सनीडा स्त्रयो बन्धुरास्तेषां योगः कर्तव्य इति तत्र यः प्रश्नः ।

प्रयोग करके, चाहे हुए दूरदेशों को शीघ्र पहुँचा करें इस काम के बिना संसारसुख होने को योग्य नहीं है ।

३३—मनुष्यों को योग्य है कि जो सूर्य वायु के छेदन आकर्षण और वृष्टि कराने वाले गुणों से नदी चलती तथा हवन किया हुआ द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों को निवारण कर सब दुःखों से रहित सुखों को सिद्ध करता है । जिससे दिन रात सुख बढ़ता है इसके बिना कोई प्राणी जीवने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे इसकी शुद्धि के लिये यज्ञ रूप कर्म नित्य करें ।

३४—हे सत्य गुण और स्वभाव वाले कारीगर लोगो तुम दोनों (यज्ञं) दिव्य गुण युक्त विमान आदि यान से जाने आने योग्य मार्ग को (कदा) कब (उपयाथः) शीघ्र जैसे निकट पहुंच जावें वैसे पहुंचते हो और (येन) जिसमें पहुंचते हो उस (रासमस्य)

उक्तानां त्रयाणां प्रश्नानामेतान्युत्तराणि वेद्यानि विभूति कामैर्नरैः।

रथस्यादिमध्यान्तेषु सर्वकलाबन्धनाधाराय त्रयो बन्धन विशेषाः कर्त्तव्याः। एकं मनुष्याणां स्थित्यर्थं द्वितीय मग्निस्थित्यर्थं तृतीयं जलस्थित्यर्थं च कृत्वा यदा यदा गमनेच्छा भवेत्तदा तदा यथायोग्यं काष्ठानि संस्थाप्याग्निं योजयित्वा कलायंत्रोद्भावितेन वायुना संदीप्य वाष्प वेगेन चालितेन यानेन सद्यो दूरमपि स्थानं समीप वत्प्राप्तुं शक्नुयुः नहीदृशेन यानेन विना कश्चिन्निर्विघ्नतया स्थानान्तरं सद्यो गंतुं शक्नोतीति। ऋ. म. १। सू० ३४। मन्त्र ६।

शब्द करने वाले (रासयन्ति शब्दयन्ति येन वेगेन तस्य रास भस्याश्विनोः)

(वाजिनः) प्रशंसनीय वेग से युक्त (त्रिवृतः) रचन चालनादि सामग्री से पूर्ण (रथस्य) और भूमि जल अन्तरिक्ष मार्ग में रमण कराने वाले विमान में (क) कहां (त्री) तीन तीन (चक्रा) चक्र रचने चाहिए और इस विमानादि यान में (ये) जो (सनीड़ा) बराबर बंधनों के स्थान वा अग्नि रहने का घर (बन्धुरः) नियम-पूर्वक चलाने के हेतु कोष्ठ होते हैं उनका (योगः) योग (क) कहां करना चाहिए ये तीन प्रश्न हैं—

इस मंत्र में कहे हुए तीन प्रश्नों के उत्तर जानने चाहिए। विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को उचित है कि रथ के आदि मध्य और अन्त में सब कलाओं के बन्धनों के आधार के लिये तीन बंधन विशेष संपादन करें। एक मनुष्यों के बैठने, दूसरी अग्नि की स्थिति और तीसरी जल की स्थिति के लिये करके। जब जब चलने की इच्छा हो तब २ यथायोग्य जल काष्ठों को स्थापन, अग्नि को युक्त और कला के वायु से प्रदीप्त करके भाफ के वेग से चलाये

३५—मनुष्यै रहर्निशं सुखायाग्निवायुसूर्याणांसकाशादुपयोगं गृहीत्वा सर्वाणि सुखानि प्राप्याणि नैतदादिना बिना कदाचित् कस्यचित्सुखं संभवतीति । ऋ. म. १ । सू. ३५ । मंत्र १ ।

३६—यथा पृथिव्यादयो लोकाः सर्वान् मनुष्यादीन् धरन्ति सूर्य लोक आकर्षणेन पृथिव्यादीन् धरति । ईश्वरः स्वसत्तया सूर्यादीन् लोकान् धरति । एवं क्रमेण सर्वलोक धारणं प्रवर्तते नैतेन विनान्तरिक्षे कस्यचित् गुरुत्वयुक्तस्य लोकस्य स्वपरिधौ स्थितेः सम्भवोऽस्ति । नैव लोकानां भ्रमणेन विना क्षण मुहूर्त प्रहराहोरात्र पक्ष मासर्तु सम्वत्सरादयः कालावयवा उत्पत्तुं शक्नुवन्तीति ।

ऋ० मण्ड १ । सू० ३५ । मंत्र २ ।

हुए यान से शीघ्र दूरस्थान को भी निकट के समान जाने को समर्थ होवें । क्योंकि इस प्रकार किये बिना निर्विघ्नता से स्थानान्तर को कोई मनुष्य शीघ्र नहीं जा सकता ।

३५—मनुष्यों को चाहिए कि दिन रात सुख के लिये अग्नि वायु और सूर्य के सकाश से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों को प्राप्त होवें । क्योंकि इस विद्या के बिना कभी किसी पुरुष को पूर्ण सुख का संभव नहीं हो सकता—

३६—जैसे सब पृथिवी आदि लोक मनुष्यादि प्राणी वा सूर्यलोक अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों वा ईश्वर अपनी सत्ता से सूर्यादि सब लोकों का धारण करता है । ऐसे क्रम से सब लोकों का धारण होता है । इसके बिना अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भारयुक्त लोक का अपनी परिधि में स्थिति होने का संभव नहीं होता । और लोकों के घूमने बिना क्षण मुहूर्त प्रहर दिन रात पक्ष मास ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयव नहीं उत्पन्न हो सकते ।

३७—यथा सूर्यादि जनन निमित्तः सूर्यादि लोक धारको बलवान् सर्वान् लोकान् आकर्षणाख्यं बलं च धरन् वायुर्वर्तते यथा च सूर्यलोकः स्वसन्निहितान् लोकान् धरन् सर्वं रूपं प्रकटयन् बलाकर्षणाभ्यां सर्वं धरति। नैताभ्यां विना कस्यचित् परमाणोरपि धारणं संभवति। तथैव राजा शुभ गुणाढ्यो भूत्वा राज्यं धरेत्।

३८—हे मनुष्या यूयं यथा सूर्य लोकस्य प्रकाशाकर्षणादयो गुणाः सन्तिते सर्वे जगद्धारण पुरस्सरं यथायोग्यं प्रकटयन्ति ये सूर्यस्य सन्निधौ लोकाः सन्तिते सूर्य प्रकाशेन प्रकाशन्ते या अनादि

३७—जैसे सूर्य आदि की उत्पत्ति का निमित्त, सूर्य आदि लोक का धारण करने वाले बलवान वायु से सब लोकों का धारण कर्ता होता है इसके बिना अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भारयुक्त लोक का अपनी परिधि में स्थिति होने का संभव नहीं होता और लोकों के घूमने बिना क्षण मुहूर्त प्रहर दिन रात पक्ष मास ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयव नहीं उत्पन्न हो सकते।

और आकर्षण रूपी बल को धारण करता हुआ वायु विचरता है और जैसे सूर्य लोक अपने समीपस्थ लोकों को धारण और सब रूप विषय को प्रकट करता हुआ बल वा आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता है और इन दोनों के बिना किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु के धारण का संभव नहीं होता वैसे ही राजा को होना चाहिए कि उत्तम गुणों से युक्त होकर राज्य का धारण किया करें।

ऋ० मण्ड १। सू० ३५। मंत्र ४।

३८-हे मनुष्यो तुम जैसे सूर्य लोक के प्रकाश वा आकर्षण आदि गुण सब जगत् को धारण पूर्वक यथायोग्य प्रगट करते हैं। और जो सूर्य के समीप लोक हैं वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते

रूपा: प्रजास्ता अपि वायुर्धरति। अनेन सर्वे लोका: स्वस्व परिधौ समवतिष्ठन्ते तथा गुणान्धरत स्वस्व व्यवस्थायां स्थित्वा न्यायान् स्थापयत च।

३६—यदायं भूगोलो भ्रमणेन सूर्य प्रकाश माच्छाद्यान्ध कारं जनयति तदाऽविद्वांसो जना: पृच्छन्ती दानीं सूर्य: क गत इति तं प्रश्न मुत्तरेणैवं समादध्यात्। पृथिव्या अपरे पृष्ठेऽस्मीति यस्य चलन मतीव सूक्ष्म मस्त्यत: प्राकृतैर्जनैर्न विज्ञायत एवं विद्वदभिप्रायोपि। ऋ० मण्ड १। सू० ३५। मंत्र ७।

४०—यथायं सूर्य लोक: सर्वाणि मूर्तद्रव्याणि प्रकाशच्छित्वा वायु द्वाराऽन्तरिक्षे नीत्वा तस्मादधो निपात्य सर्वाणि रमणीयानि सुखानि जीवार्थं नयति। पृथिव्या मध्ये स्थिताना मेकोन पंचाशत्

हैं। जो अनादि रूप प्रजा है उसको भी वायु धारण करता है। इस प्रकार होने से सब लोक अपनी २ परिधि में स्थित होते हैं वैसे तुम सद्‌गुणों का धारण और अपने २ अधिकारों में स्थित होकर अन्य सब को न्याय मार्ग में स्थापन किया करो।

३६-जब यह भूगोल अपने भ्रमण से सूर्य के प्रकाश का आच्छादन कर अंधकार करता है तब साधारण मनुष्य पूछते हैं कि अब वह सूर्य कहां गया। उस प्रश्न के उत्तर में समाधान करे कि पृथिवी के दूसरे पृष्ठ में है जिसका चलना अति सूक्ष्म है जैसे वह सूर्य मनुष्यों से जाना नहीं जाता वैसे ही महाशय मनुष्यों का आशय भी अविद्वान् लोग नहीं जान सकते।

४०—जैसे यह सूर्य लोक सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश छेदन वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहां से नीचे गेर कर सब रमणीय सुखों को जीवों के लिये उत्पन्न करता है और पृथिवी में

क्रोशपर्यन्तेऽन्तरिक्षे स्थूल सूक्ष्म लघु गुरुत्व रूपेण स्थितानां चापां सप्तसिंध्विति संज्ञिता: सर्वा आकर्षणेन धरति च तथा सर्वैर्विद्वद्भिर्विद्या धर्माभ्यां सकलान् मनुष्यान् धृत्वा ऽऽनन्दयितव्या: ।

ऋ० मण्ड १ । सू० ३५ मंत्र ८ ।

४१—यदि मनुष्या: परम विदुषां सकाशाच्छिल्प विद्यां गृह्णीयुस्तर्हि विमानादियानानि रचयित्वा पक्षिवदाकाशे गन्तुं शक्नुयु: ।

ऋ. म. १। सू. ४६। मंड ३।

४२—हे शिल्पिनौ युवां यथाऽसितो भा: सूर्योंशवे जिह्वये वाख्यत् सन्मुखोऽभूत्तथा तत्सन्निधौ तद्यानं स्थापयित्वा तत्रोचित स्थाने हिरण्यं ज्योति: सुवर्णादिकं रक्षेत् ।

हे यानयायिनो मनुष्या यूयं ध्रुव यंत्र सूर्यादि निमित्तेन दिशो विज्ञाय यानानि चालयत स्थापयत च यतोभ्रान्त्याऽन्यत्र गमनं नस्यात् ।

ऋ. म. १। सू. ४६। मंत्र १०

स्थित और उनचांस कोश पर्यन्त अन्तरिक्ष में स्थूल सूक्ष्म लघु और गुरु रूप से स्थित हुए जलों को अर्थात् जिनका सप्तसिंधु नाम है आकर्षण शक्ति से धारण करता है वैसे सब विद्वान् लोग विद्या और धर्म से सब प्रजा को धारण करके सब को आनन्द में रखें ।

४१—जो मनुष्य लोग बड़े२ ज्ञानी के समीप से कारीगरी और शिक्षा को ग्रहण करें तो विमानादि सवारियों को रच के पक्षी के तुल्य आकाश में जाने आने को समर्थ होवें ।

४२–हे कारीगरो तुम लोग जैसे (असित:) अबद्ध अर्थात् जिसका किसी के साथ बंधन नहीं है (भा:) प्रकाश युक्त (सूर्य:) सूर्य के (अंशवे) किरणों के विभागार्थ (जिह्वया) जीभ के समान (व्यख्यत्) प्रसिद्धतासे प्रकाशमान सन्मुख (अभूत्) होता है वैसे उसी पर यान का स्थापन कर उसमें उचित स्थान में (हिरण्यं) सुवर्णादि

४३—मनुष्यै र्ज्ञातव्य मीश्वर विद्यावृद्धयो र्हानिविपरीतता भवितुं न शक्या। सर्वेषु कालेषु सर्वासु क्रियासु एकरस सृष्टि नियमा भवन्ति। तथा सूर्यस्य पृथिव्याः सहाकर्षण प्रकाशादि सम्बन्धाः सन्ति तथैवान्यभूगोलैः सहसन्ति। कुत ईश्वरेण संस्थापितस्य नियमस्य व्यभिचारो न भवति। ऋ० म० १। सू० ८४। मन्त्र १५।

४४ इह सृष्टौ सर्वदा सूर्यप्रकाशो भूगोलार्धं प्रकाशयति भूगोलार्द्धे च तमस्तिष्ठति। सूर्य प्रकाश मन्तरेण कस्यचिद्वस्तुनो-ज्ञानविशेषो नैव जायते। सूर्य किरणाः प्रतिक्षणं भूगोलानां-भ्रमणेन गच्छन्तीव दृश्यन्ते। येषाः स्वस्वलोकस्था सा प्रत्यक्षा

उत्तम पदार्थों को धरो। हे सवारी पर चलने वालेमनुष्यों तुम दिशाओं के जाननेवाले चुम्बक, ध्रुव यंत्र और सूर्यादि कारण से दिशाओं को जान, यानों को चलाओ और ठहराया भी करो। जिससे भ्रान्ति में पड़ कर अन्यत्र गमन न हो। अर्थात् जहां जाना चाहते हो, ठीक वहीं पहुंचो भटकना न हो।

४३—मनुष्यों को जानना चाहिए कि ईश्वर की विद्या वृद्धि की हानि और विपरीतता नहीं हो सकती। सब काल सब क्रियाओं में एक रस सृष्टि के नियम होते हैं। जैसे सूर्य का पृथिवी के साथ आकर्षण और प्रकाश आदि सम्बन्ध हैं वैसे अन्य भूगोलों के साथ भी है। क्योंकि ईश्वर ने स्थिर किये (ईश्वर द्वारा बनाए) नियम का व्यभिचार अर्थात् भूल कभी नहीं होती।

४४–इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग में अंधकार रहता है। सूर्य के प्रकाश के बिना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता। सूर्य की किरणें क्षण २ भूगोल आदि लोकों के घूमने से गमन

या दूरलोकस्था साऽप्रत्यक्षा। इमाः सर्वेषु लोकेषु सदृशगुणाः सर्वासु दिक्षु प्रविष्टाः सन्ति। यथाऽऽयुधान्यभि मुखदेशागमनेन लोम प्रतिलोम गतीर्गच्छन्ति तथैवोषसोऽनेक विधानामन्येषां लोकानां गतियोगाल्लोम प्रतिलोम गतयो गच्छन्तीति मनुष्यैर्वेद्यम्।
ऋ० म० १। सू० ६२। मं० १

४५—ये सूर्यस्य किरणा भूगोलान् सेवित्वा क्रमशो गच्छन्ति ते सायं प्रातर्भूमियोगेनारक्ता भूत्वाऽऽकाशं शोभयन्ति। यदैता उषसः प्रवर्तन्ते तदा प्राणिनां विज्ञानानि जायन्ते। येभूमिस्पृष्टा आरक्ताः सूर्यं सेवित्वा रक्तं कृत्वौषधीः सेवन्ते ताजागरितैः मनुष्यैः सेवनीयाः। म० १। सू. ८२। मं. २

करती सी दीख पड़ती हैं जो प्रातःकाल के रक्त प्रकाश अपने २ देश में हैं वे प्रत्यक्ष और जो दूसरे देश में हैं वे अप्रत्यक्ष ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एक सी सब दिशाओं में प्रवेश करती हैं। जैसे शस्त्र आगे पीछे जाने से सीधी उलटी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातः प्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी तिरछी चालों से युक्त होते हैं। यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिए।

४५—जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि लोकों का सेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई क्रम २ से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायंकाल के समय भूमि के संयोग से लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं और जब वे प्रातःकाल लोकों में प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं। जो भूमि पर गिरी हुई लाल वर्ण की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर और उसको लाल कर ओषधियों का

४६—सूर्यस्य यत्केवलं ज्योति स्तद्दिनं यत्तिर्यक्गति भूमिस्पृक् तदुषाश्चेत्युच्यते। नैतया विना जगत्पालनं संभवति तस्मादेतद्विद्या मनुष्यै रवश्यं भावनीया। ऋ. म. १। अ. १४। सू. ६२। मं. २४

४७—यथा सर्वगुण संपन्नया सुलक्षणया कन्यया पितरौ सुखिनौ भवतः तथोषर्विद्यया विद्वान्सः सुखिनो भवन्तीति।

ऋ. म. १। सू. ६२। मंत्र ७।

४८—य उषर्विद्यया प्रयतन्ते तएवैतत्सर्वं वस्तु प्राप्य संपन्ना भूत्वा सदानन्दन्तिनेतरे। ऋ. मंड १। सू. ६२ मं. ८।

४६—मनुष्यै वार्युविद्युतावेव सर्वलोक सुख धारणादि व्यव-

सेवन करती हैं उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिये।

४६—जो सूर्य की केवल ज्योति है वह दिन कहाता और जो तिरछी हुई भूमि पर पड़ती है वह (उषा) प्रातःकाल की वेला कहाती अर्थात् प्रातः समय अतिमन्द सूर्य की उजेली तिरछी चाल से जहां तहां लोक लोकान्तरों पर पड़ती है उसके बिना संसार का पालन नहीं हो सकता। इससे इस विद्या की भावना ममुष्यों को आवश्यक होनी चाहिये।

४७—जैसे सर्वगुण आगरी सुलक्षणी कन्या से माता पिता चाचा आदि सुखी होते हैं वैसे ही प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुण प्रकाशित करने वाली विद्या से विद्वान् लोग सुखी होते हैं।

४८—जो लोग प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुणों को जताने वाली विद्या से अच्छे २ यत्न करते हैं वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं; किन्तु और नहीं।

हारे हेतू भवत इति बोध्यम् । ऋ. म. १। अ. १४। सू. ८३। मं १.

५०—हे मनुष्या यूयमेतयोर्वायुविद्युतो र्द्वेस्वरूपेस्त एकं कारण भूतं द्वितीयं कार्यभूतंच । तयोर्यः कारणाख्यं तद्विज्ञानगम्यंयच्च कार्याख्यं तदिन्द्रियग्राह्यमेतेन कार्याख्येन विदित गुणोपकार कृतेन वायुनाग्निना वा कारणाख्ये प्रवेशं कुरुतः । अयमेव सुगमो मार्गोयत्कार्य द्वारा कारणे प्रवेश इति विजानीत । ऋ. म. १ । अ. १४ । सू. ८३ । मं. ६

५१—मनुष्यै रग्नौ यावन्ति सुगंध्यादि युक्तानि द्रव्याणि हूयन्ते तावन्ति वायुना सहाकाशं गत्वा मेघमण्डलस्थं जलं शोधयित्वा सर्वेषां जीवानां सुखहेतुकानि भूत्वा धर्मार्थ काम मोक्ष साधकानि भवन्तीति वेद्यम् ऋ. म. १ । सू. ८३ । मंत्र ७ ।

४६—मनुष्यों को जानना चाहिये कि पवन और बिजुली ये ही दोनों सब लोगों के सुख के धारणादि व्यवहार के कारण हैं ।

५०—हे मनुष्यों तुम लोग जो पवन और विजली के दो रूप हैं एक कारण और दूसरा कार्य। उनमें से जो पहला है वह विशेष ज्ञान से जानने योग्य और जो दूसरा है वह प्रत्यक्ष इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य है । जिसके गुण और उपकार जाने हैं उस पवन व अग्नि से कारण रूप में उक्त अग्नि और पवन प्रवेश करते हैं । यही सुगम मार्ग है जो कार्य के द्वारा कारण में प्रवेश होता है, ऐसा जानो ।

५१—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि आग में जितने सुगन्धियुक्त पदार्थ होते जाते हैं सब पवन के साथ आकाश में जा मेघ मंडल के जल को शोध और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके अनन्तर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करने हारे होते हैं ।

५२—मनुष्यै र्नह्यहोरात्रौ कदाचिन्निवर्त्तेते किन्तु देशान्तरे सदाधर्त्तेते । यानि कार्याणि रात्रौ कर्त्तव्यानि यानि च दिवसे तान्य-नालस्येनानुष्ठाय सर्व कार्य सिद्धी: कार्या । ऋ. म. १ । सू. ८५ मं १

५३—मनुष्यै रनियत देश काला विभुस्वरूपा पूर्वादि क्रम जन्या: सर्व व्यवहार साधिका दशदिशा सन्तितासु नियता व्यव-हारा: साधनीया नात्र खलु केनचिद् विरुद्धो व्यवहारोऽनुष्ठेय: ।

५४—न ह्यहोरात्राद्यवयव वर्तमानेन बिना भूत भविष्यद् वर्त-मान काला: संभवितुं शक्या: नैतैर्विना कस्यचिदृतो: सम्भवोऽस्ति । य: सूर्यान्तरिक्षस्थ वायु गत्या कालावयव समूह: प्रसिद्धोऽस्तितं सर्वं विज्ञाय सर्वै मनुष्यै: व्यवहार सिद्धि: कार्या । ऋ. म. १। अ. १५ सू. १५। मं. ३।

५२—मनुष्यों को जानना चाहिए कि दिन रात कभी निवृत्त नहीं होते किन्तु सर्वदा बने रहते हैं । अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में होते हैं जो काम रात और दिन में करने योग्य हों, उनको निरालस्य होकर करें ॥

५३—मनुष्य को चाहिए कि जिनके देश काल का नियम अनुमान में नहीं आता ऐसा अनन्तरूप पूर्व आदि क्रम से प्रसिद्ध सब व्यवहारों की सिद्धि कराने वाली दश दिशा हैं उनमें नियम युक्त व्यवहारों को सिद्ध करें इनमें किसी को विरुद्ध व्यवहार न करना चाहिये ।

५४—दिन रात आदि समय के अंगों के वर्त्ताव के बिना भूत भविष्यत् और वर्तमान कालों की संभावना भी नहीं हो सकती और न इनके बिना किसी ऋतु के होने का संभव है जो सूर्य्य और अन्तरिक्ष में ठहरे हुए पवन की गति से समय के अवयव

५५—मनुष्यैर्यस्य परमसूक्ष्मो बोधोऽस्ति यः सर्वान् काल विभागान् प्रकटयति कर्माणि व्याप्नोति सर्वत्रैकरसः कालोऽस्ति तं कश्चिन्निपुणो विद्वान् ज्ञातुं शक्नोति नहिसर्व इतिवेद्यम् ।

ऋ. म. १। अ. १५ सू. ६५।४ मन्त्र

५६—मनुष्यै र्यःसृष्टयुत्पत्ति समयाज्जातोऽग्निश्छेदकत्वादूर्ध्व-गामी काष्ठादिष्वा विष्टतया वर्धमानः सूर्यरूपेण दिग्बोधकोऽस्ति सोपि कालादुत्पद्य कालेन विनश्यतीति वेद्यम् ।

ऋ. म. १ । स. ६५ । मन्त्र ५

५७—मनुष्यै र्न खलु कालेन विना कार्यं स्वरूप मुत्पाद्य प्रली-यते नैव ब्रह्मचर्यादि काल सेवनेन विना सर्व शास्त्र बोध सम्पन्ना बुद्धिर्जायतेतस्मात्कालस्य परम सूक्ष्म स्वरूपं विज्ञायैष व्यर्थो नैव

अर्थात् दिन रात्रि आदि प्रसिद्ध हैं उन सब को जान के सब मनुष्यों को चाहिये कि व्यवहार सिद्धि करें ।

५५—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिसका सूक्ष्म से सूक्ष्म बोध है जो समस्त अपने अवयवों को प्रकट करता है सब कामों में व्याप्त होता जिसमें सब जगत् एक रस रहता है उस समय को कोई परम विद्वान् जान सकता है, सब कोई नहीं ।

५६—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि संसार की उत्पत्ति के समय से जो उत्पन्न हुआ अग्नि है वह छेदन गुण से ऊर्ध्वगामी अर्थात् जिसकी लपट ऊपर को जाती और काष्ठ आदि पदार्थों में अपनी व्याप्ति से बढ़ता और सूर्य रूप से दिशाओं का बोध कराने वाला है वह भी सब समय से उत्पन्न होकर समय पाकर ही नष्ट होता हैं ।

५७—मनुष्य को समझना चाहिए कि काल के बिना कार्य स्वरूप उत्पन्न होकर और नष्ट हो जाय, यह होता ही नहीं और

नेयः किन्त्वालस्यं त्यक्त्वा समयानुकूलं व्यावहारिक पारमार्थिकं कर्म सदानुष्ठेयम् । म. ८ । सू. ६५ । मंत्र ६ ।

५८—मनुष्यै र्नहि विभुना कालेन बिना सूर्यादि कार्यं जगतः पुनः पुनर्वर्तमानं जायते न चैतस्मात्पृथक् अस्माकं किंचिदपि कर्म संभवतीति विज्ञातव्यम् । ऋ. म. १ । ६५ सू. । मन्त्र ६।

न ब्रह्मचर्य आदि उत्तम समय के सेवने बिना शास्त्र बोध कराने वाली बुद्धि होती है । इस कारण काल के परम सूक्ष्म रूप को जान कर थोड़ा भी समय व्यर्थ न खोवें किन्तु आलस्य छोड़ के समय के अनुकूल व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें ।

ऋ. म. १ । सू. ६५ । मंत्र ८

५८—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि समय के बिना सूर्य आदि कार्य जगत् का बार २ बर्ताव नहीं होता और न उससे अलग हम लोगों का कुछ भी काम अच्छी प्रकार होता है ।

इति दयानन्दोपनिषदः प्रकृतिस्वरूप निरूपणं
समाप्तम् ।

दयानन्दोपनिषद का प्रकृति स्वरूप प्रकरण
समाप्त ।

सभा सेना संगठन प्रकरण (राजनीति प्रकरण)

ओ३म् मरुत्स्तोत्रस्य गोपा वय मिन्द्रेण सनुयाम वाज़म् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उतद्यौः ।

ऋ. म. १ । सू. १०१ । मंत्र ११ ।

न खलु संग्रामे केषांचित् पूर्णबलेन सेनाधिपतिना विना शत्रुपराजयो भवितुं शक्यः । नैव किलकश्चित् सेनाधिपतिः सुशिक्षितया पूर्णबलया साङ्गोपाङ्गया हृष्टपुष्टया सेनया विना शत्रून् विजेतुं राज्यं पालयितुं च शक्नोति । नैतावदन्तरेण मित्रादयः सुखकारका भवितुं योग्या स्तस्मादेतत्सर्वं सर्वैर्मनुष्यैः यथावन्मन्तव्यमिति ।

१—हे मनुष्याः यो ज्ञान कर्मवत्सदा वर्तमानोऽनुकूलस्त्रीवत्सर्व सुखनिमित्तः सूर्यवत्प्रकाशकोऽद्भुतो रथवन्मोक्ष मार्गस्यनेता,

---

निश्चय है कि संग्राम में कभी पूर्णबली सेनाधिपति के विना शत्रुओं का पराजय नहीं हो सकता और न कोई सेनाधिपति अच्छी शिक्षा की हुई पूर्ण बल अङ्ग और उपाङ्ग सहित आनन्दित और पुष्ट सेना के विना शत्रुओं को जीतने वा राज्य की पालना करने को समर्थ हो सकता है न उक्त व्यवहारों के विना मित्र आदि सुख करने के योग्य होते हैं, इससे उक्त समस्त व्यवहार सब मनुष्यों को यथावत मानना चाहिए ।

१—हे मनुष्यो जो मनुष्य ज्ञान और कर्म दोनों के साथ व्यवहार करता है, अनुकूल स्त्री की भांति सब सुखों का निमित्त है । सूर्य की भांति प्रकाश करने वाला, रथ की भांति मोक्ष मार्ग पर ले

वीरवद्युद्धेषु विजेता वर्तते स राज्यश्रिय मवाप्नोति।

ऋ० म० १। अ० १२। सू० ६६। मन्त्र ३

२—मनुष्यै विद्यया सम्यक् प्रयत्नेन यथा सुशिक्षिता सेना शत्रून् विजित्य विजयं करोति; यथा च धनुर्वेदविदः शत्रूणामुपरि शस्त्रास्त्राणि प्रक्षिप्यैतान्विच्छिद्य प्रलयं गमयन्ति तथैवोत्तमः सेनाधिपतिः सर्वं दुःखानि नाशयतीति बोद्धव्यम्॥

ऋ० म० १। सू० ६६। मंत्र ४

३—यथा परमेश्वरः स्वकीयैर्विज्ञानबलादिगुणैः सर्वं जगद्धरति यथा प्रियः सखा स्वकीयं मित्रं दुःख बन्धात् पृथक् कृत्य प्रियाणि सुखानि प्रापयति, यथा ऽऽन्तर्यामि रूपेण परमेश्वरो जीवादिकं धृत्वा प्रकाशयति तथैव सभ्याध्यक्षः सत्यन्यायेन राज्यं सूर्यः स्वैराकर्षणादि गुणैर्जगच्च धरति। ऋ० म० १। अ० १२। सू० ६७। अ० ३।

जाने वाला, अद्भुत गुणों वाला नेता सारथि है, वीर पुरुष की भांति युद्धों में विजय प्राप्त करता है। वही राज्य श्री को प्राप्त करता है।

२—मनुष्यों को यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार विद्या और सम्यक् प्रयत्न से सुशिक्षित सेना शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों द्वारा प्रहार कर, उनको छिन्न-भिन्न कर उनका लय करती हैं उसी प्रकार से उत्तम सेनापति सब दुःखों को नष्ट करता है।

३—जिस प्रकार परमेश्वर अपने विज्ञान बलादि गुणों से सारे संसार को धारण करता है। जिस प्रकार प्रिय सखा अपने मित्र को दुःख बन्ध से पृथक् कर प्रिय सुख प्राप्त कराता है जिस प्रकार परमात्मा अन्तर्यामी रूप में जीवादियों को धारण कर प्रकाशित करता है उसी प्रकार से सभाध्यक्ष को चाहिए कि वह सत्यन्याय

४—हे मनुष्या: यथा गवां दुग्धस्थानं यथा च विद्वज्जन: सर्वस्य हितकारी भवति तथैव शुभैर्गुणैर्व्याप्ता:सभादिषु स्थिता: सभाध्यक्षा दयो यूयं सर्वान् सुख यत। म० १। सू० ६६। मंत्र २

५—हे मनुष्या यूयं यस्योपाश्रयेण शत्रूणां पराजयेन विजय: स्ववि जयेन च राज्यधनानि जायन्ते तं नित्यं सेवध्वम्।

ऋ० म० १। सू० ७४। मं० ३।

६—मनुष्यै र्य: सर्वोत्कृष्टगुणकर्मस्वभाव: सज्जन: सर्वोपकारी मनुष्योऽस्ति स एव सभाध्यक्षत्वेन राजा मन्तव्य:। नैव कस्यचिदे

से राज्य को धारण करे और सूर्य की भांति अपने आकर्षणादि गुणों से प्रजाओं को धारण करे।(भारत में ऐसे राजाओं को सूर्यवंशी राजा कहते थे—सम्पादक)

४—हे मनुष्यो जिस प्रकार गउओं का दुग्ध तथा दुग्धस्थान और विद्वान् सब का हित करते हैं उसी प्रकार से तुम लोग सभादियों में सम्मिलित होकर, सभाध्यक्ष होकर सब को सुखी करो।

५–जिसका सहारा लेने से शत्रुओं का पराजय करके विजय प्राप्त होता है और अपने विजय से जिसके सहारे से राज्य धन मिलते उसकी सेवा तथा आश्रय लो। (केवल शत्रु पराजय, और स्वविजय अन्तिम उद्देश्य नहीं एसा शत्रु पराजय होना चाहिए जिससे अपनी विजय हो और उस विजय को चाहना चाहिए जिससे राष्ट्र को राज्य धन प्राप्त हो। सम्पादक)

ऋ० म० १। अ० १३। सू० ७७। मं० ३

६—मनुष्यों को चाहिए कि जो सबसे अधिक गुणकर्म और स्वभाव तथा सबका उपकार करने वाला सज्जन मनुष्य है उसी को सभाध्यक्ष का अधिकार दे के, राजा मानें। अर्थात् किसी एक मनुष्य

कस्याज्ञायां राज्यव्यवहारो ऽधिकर्तव्यः । किन्तु शिष्टसभाधीनान्येव सर्वाणि कार्याणि रक्षणीयानि ।

७-मनुष्यै र्यथा राजा सुसेवितज्जगदीश्वरात्सेनापतेर्वा सेनापतिना सुसेविता सेना वा सुखानि प्राप्नोति यथा च सभाद्यध्यक्षाः प्रजा सेनाना मानु कूल्ये वर्तेरन् तथैवै तेषां मानुकूल्ये प्रजा सेनास्थै र्भवितव्यम् । ऋ० १ मं० । सू० ८२ । मंत्र १

८—मनुष्यैरुत्तमगुण कर्म स्वभावयुक्तस्य सर्वथा प्रशंसिताचरणस्य सेनाद्यध्यक्षस्योपदेशकस्य वा गुण प्रशंसनाऽनुकरणाभ्यां नवीनौ विज्ञान पुरुषार्थौ वर्धयित्वा सर्वदा प्रसन्नतयानन्दा भोक्तव्याः । ऋ मं० १ । सू० ८२ । मंत्र १

को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देवें, किन्तु शिष्ट पुरुषों की जो सभा है, उसके आधीन राज्य के सब काम रखें ।

७ -जिस प्रकार राजा परमात्मा की सेवा करने तथा सेनापति द्वारा सेवित हुआ और सेनापति से सुसेवित सेना, सुखों को प्राप्त करते हैं और सभापति तथा प्रजाएं सेनाओं के अनुकूल होकर वर्तती है वैसे ही सेनापति तथा सैनिकों को भी सभा सभापति और प्रजा के अनुकूल होकर रहना चाहिए। मनुष्यों को इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए जिससे राजा प्रजा और सेना परस्पर अनुकूल होकर वर्तें ।

८—मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव युक्त सब प्रकार उत्तम आचरण करने हारे सेनापति और सभापति तथा सत्योपदेशक आदि के गुणों की प्रशंसा और कर्मों से नवीन २ विज्ञान और पुरुषार्थ को बढ़ा कर सदा प्रसन्नता से आनन्द का भोग करें ।

९—सेनाध्यक्षेण पूर्ण शिक्षा बल हर्षितां हस्त्यश्वरथ शस्त्रादि सामग्री परिपूर्णां सेनां सम्पाद्य शत्रवो विजेयाः।

ऋ० म० १। सू० ८। मंत्र ४

१०—राज्ञा स्व पत्न्या सह सुशिक्षिते रश्वैर्युक्ते याने स्थित्वा युद्धे विजयो व्यवहारे आनन्दः प्राप्तव्यः। कचिद् भ्रमणार्थं वा गच्छेत्तत्र २ शिल्पि रचिते दृढ़े रथे स्त्रिया सहितः स्थित्वैव यायात्। ऋ० म० १। सू० ८२। मन्त्र ५

११—मनुष्यैर्येऽश्वादि संयोजका भृत्या स्ते सुशिक्षिता एव रक्षणीयाः। स्वस्त्र्यादयोपि स्वानुरक्ता एव करणीयाः स्वयमप्येते-ष्वनुरक्तास्तिष्ठेयुः सर्वदा युक्तः सन्सुपरीक्षितै रेतैर्धर्म्याणि संसाधयेत्। ऋ० म० १। सू० ८३ मन्त्र ६।

९—सेनापति को योग्य है कि शिक्षा बल से हृष्ट-पुष्ट हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र, अस्त्रादि सामग्री से पूर्ण सेना को प्राप्त करके शत्रुओं को जीता करे।

१०—राजा को योग्य है कि अपनी राणी के साथ अच्छे सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ में बैठ के युद्ध में विजय और व्यवहार में आनन्द को प्राप्त होवे। जहां २ युद्ध में वा भ्रमण के लिये जावें वहां २ उत्तम कारीगरों (ने बनाए) द्वारा बनाए सुन्दर रथ में स्त्री के सहित स्थित होके ही जावे।

११—मनुष्यों को योग्य है कि जो अश्वादि की शिक्षा सेवा करने हारे और उनको सवारियों में चलाने वाले भृत्य हों वे अच्छी शिक्षा युक्त हों और अपनी स्त्रियादि को भी अपने से प्रसन्न रख के आप भी उनमें यथावत् प्रीति करे। सर्वदा युक्त होके सुप-रीक्षित स्त्री आदि में धर्म कार्यों को साधा करें।

१२—सेनाध्यक्षादिभी राजपुरुषै र्ये भृत्याः स्व स्वाधिकृतेषु कर्मसु यथावन्न वर्तेरन् तान् सुदण्डय ये चानुवर्तेरंस्तान् सुसत्कृत्य बहुभि रुत्तमैः पदार्थैः सत्कारैः सह योजितानां संतोषं सम्पाद्य राजकार्याणि संसाधनीयानि नहि कश्चिद्यथापराधिने दण्ड दानेन सुकर्मानुष्ठानाय पारितोषेण च विना यथावद् राज व्यवस्थां संस्थापयितुं शक्नोत्यत एतत्कर्म सदानुष्ठेयम् । म० १। सू० ८३। मंत्र १

१३—प्रजा सेना शाला सभास्थैः पुरुषैः सुपरीक्ष्य सूर्य सदृशं प्रजा सेना शाला सभाध्यक्षं कृत्वा सर्वथा स सत्कर्तव्य एवं सभ्या अपि प्रतिष्ठापयितव्याः । ऋ. म. १ । सू० ८४ । मंत्र १

१४—सभाध्यक्षैः सेनायां द्वावध्यक्षौ रक्षयेतां तयोरेकः सेनापति र्योधयिता द्वितीयो वक्तृत्वेनोत्साहायोपदेशकः । यदा युद्धं प्रवर्तेत

१२—सेनापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि जो भृत्य अपने २ अपने अधिकार के कार्यों में यथायोग्य न वर्तें उनको अच्छे प्रकार दण्ड दे और जो न्याय के अनुकूल वर्तें उनका सत्कार बहुत से उत्तम पदार्थों से सत्कार कर उन्हें सन्तुष्ट कर राजकार्य सिद्ध करने चाहिये । कोई भी मनुष्य अपराधी को दण्ड दिये बिना और अच्छा काम करने वाले को पारितोषिक दिए बिना राज्य व्यवस्था स्थित नहीं कर सकता अतः यह काम करना चाहिए।

१३—प्रजा सेना और पाठशालाओं की सभाओं में स्थित पुरुषों को योग्य है कि अच्छे प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्रजा सेना और पाठशालाओं का अध्यक्ष करके सब प्रकार से उसका (उनका) सत्कार करना चाहिए, वैसे सभ्य जनों की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

तदा सेनापति र्भृत्यान् सुपरीक्ष्योत्साह्य शत्रुभिः सह योधयेद्यतो ध्रुवो विजयः स्याद् यदा युद्धं निवर्तेत तदोपदेशकः सर्वान् योद्धृन् परिचारकांश्च शौर्य कृतज्ञता धर्म कर्मोपदेशेनात्साह युक्तान् कुर्यादेवंकर्तृणां कदाचित् पराजयो भवितुन्न शक्यत इति।

ऋ० म० १। सू० ८४। मंत्र ३

१५. कश्चिदपि विद्या सुभोजनैर्विना वीर्यं प्राप्तुं न शक्नोति तेन विना सत्यस्य विज्ञानं विजयश्च न जायते। ऋ. म. १ सू ८४. मं.३

१६. मनुष्यै र्यः सर्वान् सत्कुर्याच्छरीरात्म बलं प्राप्य परोपकारी भवेत् तं विहायान्यः सेनाधयिकारे कदाचिन्नैव संस्थाप्यः

ऋ. म. १। सू० ८४। मंत्र ५।

---

१४. सभापतियों को योग्य है कि सेना में दो प्रकार के अधिकारी रक्खें उनमें से एक सेना को लड़ावे और दूसरा अच्छे भाषणों से योद्धाओं को उत्साहित करे। जब युद्ध हो तब सेनापति अच्छी प्रकार परीक्षा और उत्साह से शत्रुओं के साथ ऐसा युद्ध करावे कि जिससे निश्चित विजय हो और जब युद्ध बन्द हो जाय तब उपदेशक योद्धा और सब सेवकों को धर्म युक्त कर्म के उपदेश से अच्छी प्रकार उत्साहित करें। ऐसा करने हारे मनुष्यों का कभी पराजय नहीं हो सकता।

१५. कोई भी मनुष्य विद्या और अच्छे पान भोजन के बिना पराक्रम को प्राप्त होने को समर्थ नहीं और इसके बिना सत्य का विज्ञान और विजय नहीं हो सकता।

१६. मनुष्यों को योग्य है कि जो सब का सत्कार करे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके परोपकारी हो, उसको छोड़ के अन्य को सेनापति आदि अधिकारों में कभी स्थापन न करें।

१७—हे मनुष्या यूयं सेनेशमेव मुपदिशत किं त्वं सर्वेभ्यो-ऽधिकः किं त्वया सदृश एव नास्ति किं कश्चिदपि त्वां विजेतुं न शक्नोति तस्मात् त्वया समाहितेन वर्तितव्यमिति। ऋ १सू. ८४। मं ६।

१८. हे मनुष्या यूयं यः सहायरहितोऽपि निर्भयो युद्धादपला-यन शीलोऽतिशूरो भवेत् तमेव सेनाध्यक्षं कुरुत ऋ. १ सू. ८० मं. ७

१९—हे मनुष्या यूयं यो दरिद्रानपि धनाढयानलसान् पुरु-षार्थ युक्तानश्रुतान् बहुश्रुतांश्च कुर्यात् तमेव सभाध्यक्षं कुरुत। कदायमस्मद्वार्तां श्रोष्यति कदा वय मेतस्य वार्तां श्रोष्याम इत्थ माशास्महे ॥८॥ ऋ. म. १। .सू ८४। मं. ८।

---

१७. हे मनुष्यो तुम सेनापति को इस प्रकार उपदेश करो कि क्या तू सब से बड़ा है क्या तेरे तुल्य कोई भी नहीं है, क्या कोई तेरे जीतने को भी समर्थ नही है। इससे तू निरभिमानता से सावधान होकर वर्ता कर।

१८—हे मनुष्यो तुम लोग जो सहाय रहित भी, निर्भय होके युद्ध से नहीं हटता तथा अत्यन्त शूर है उसी को सेना का स्वामी बनाओ।

१९—हे मनुष्यो तुम लोग जो दरिद्रों को भी धनयुक्त आल-सियों को पुरुषार्थी और श्रवण रहितों को श्रवणयुक्त करे—(अर्थात् अज्ञानियों को उपदेशादि द्वारा बहुश्रुत बनाए) उस पुरुष ही को सभा आदि का अध्यक्ष करो। इस सभाध्यक्ष से आशा करनी चाहिये कि वह हमारी बात को सुनेगा और हमें भी अपनी बात सुनाएगा। (कब यहां हमारी बात को सुनोगे और हम कब आप की बात को सुनेंगे ऐसी आशा हम करते हैं)।

२०—हे मनुष्या यूयं यः शत्रूणां बलं हत्वा युष्मान् दुःखेभ्यो वियोज्य सुखिनः कर्तुं शक्नोति यस्य भयपराक्रमाभ्यां शत्रवो निलीयन्ते तं किल सेनापतिं कृत्वा नन्दत।

ऋ० म० १। सू० ८४। मं० ६।

२१—नहि स्व सेनापतिभिर्वीरसेनाभिश्च विना स्वराज्यस्य शोभा रक्षणे, भवितुं शक्ये इति यथा सूर्यस्य किरणाः सूर्येण विना स्थातुं वायुना जलाकर्षणं कृत्वा वर्तितुं च न शक्नुवन्ति तथा सेनापतिना राज्ञा चान्तरेण प्रजाश्चानन्दितुं न शक्नुवन्ति।

ऋ० म० १। सू० ८४। मं० १०।

२२—यथा गोपालस्य धेनवो जलं पीत्वा घासं जग्ध्वा सुखं वर्धित्वाऽऽन्येषामानन्दं वर्धयन्ति तथैव सेनाध्यक्षस्य सेनाः सूर्यस्य

२०—हे मनुष्यो तुम लोग जो शत्रुओं के बल का हनन करके तुम को दुखों से हटा कर सुखयुक्त करने को समर्थ हो तथा जिसके भय और पराक्रम से शत्रु नष्ट होते हैं, उसे सेनापति करके आनन्द को प्राप्त होओ ॥६॥

२१—अपनी सेना के पति और वीर पुरुषों की सेना के विना निज राजा की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती जैसे सूर्य के किरण सूर्य के विना स्थित और वायु के विना जल का आकर्षण करके वर्षाने के लिये समर्थ नहीं हो सकते; वैसे सेनाध्यक्ष के विना और राजा के विना प्रजा आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती।

२२—जैसे गोपाल की गौ जल रस को पी निज सुख को बढ़ा कर आनन्द को बढ़ाती हैं, वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरण ओषधियों से वैद्यक शास्त्र के अनुकूल वा उत्पन्न

च किरणाओषधीभ्यो वैद्यकशास्त्र सम्पादितं परिपक्वं वा रसं-पीत्वा विजयप्रकाशं वा कृत्वा नन्दयन्ति।

ऋ० म० १। सू० ८४। मं० ११।

२३—मनुष्यैर्नहि सामग्र्या बलेन नियमैर्विनाऽनेकानि राज्यादीनि सुखानि संपद्यन्ते तस्मा द्यमनियमाना मानुयोग्य मेतत्सर्वं संचित्य विजयादीनि कर्माणि साधनीयानि।

ऋ० मण्ड १। सू० ८४। मंत्र १२।

२४—मनुष्यैः स एव सेनापतिः कार्यो यः सूर्यवच्छत्रूणां हन्ता, स्वसेना रक्षकोऽस्तीति वेद्यम्। ऋ० मण्ड १। सू० ८४। मंत्र १३।

२५—मनुष्यैः योऽसहायोऽप्यनेकान् योद्धॄन विजयते स संगामे अन्यत्र वा प्रोत्साहनीयः। यथा प्रोत्साहेन वीरेषु शौर्यं जायते न तथा खल्वन्येन प्रकारेण भवितुं शक्यम्।

ऋ. म. १। सू. १००। मं. ७।

हुए परिपक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती हैं।

२३—मनुष्यों को योग्य है कि सामग्री बल और अच्छे नियमों के बिना बहुत राज्य आदि के सुख नहीं प्राप्त होते। इस हेतु से यम नियमों के अनुकूल जैसे चाहिए वैसे इसका विचार करके विजय आदि धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करें।

२४—वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं का हन्ता और अपनी सेना का रक्षक है।

२५—मनुष्यों को चाहिये कि जो अकेला हो अनेक योद्धाओं को जीतता है उसका उत्साह संग्राम और व्यवहारों में अच्छे प्रकार बढ़ावें, अच्छे उत्साह से वीरों में जैसी शूरता होती है वैसी निश्चय है कि और प्रकार से नहीं होती।

२६—हे मनुष्या यः शत्रून् विजित्य धार्मिकान् संरक्ष्य विद्या धने उन्नयति यं प्राप्य सूर्यप्रकाशमिव विद्या प्रकाश माप्नुवन्ति तं जनमानन्द दिवसेषु सत्कुर्युः । नह्येयं विना कस्य चिच्छ्रेष्ठेषु कर्मसूत्साहोभवितुं शक्यः । ऋ० म० १ । सू० १०० । मन्त्र ८ ।

२७—यः सेनाव्यूहान् सेनाङ्गशिक्षारक्षण विज्ञानं पूर्णां युद्ध सामग्रीं चार्जितुं शक्नोति स एव शत्रुपराजयेन विजये प्रजारक्षणे च योग्यो भवति । ऋ० म० १ । सू० १०० । मन्त्र ६

२८—मनुष्यै यः पुर नगर ग्रामाणां सम्यग्रक्षिता पूर्ण सेनाङ्ग सामग्री सहितो विदित कला कौशल शस्त्रास्त्र युद्ध क्रियः पूर्णविद्या बलाभ्यां पुष्टः शत्रूणां पराजयेन प्रजापालन प्रसन्नो भवति स एव सेनाद्यधिपीतः कर्तव्यो नेतरः ।

ऋ० म. १ । सू. १०० । मन्त्र १०

२६—हे मनुष्यो जो शत्रुओं को जीत और धार्मिकों की पालना कर विद्या और धन की उन्नति करता है । जिसको पाकर जैसे सूर्य लोक का प्रकाश है वैसे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं उस मनुष्य को आनन्द मंगल के दिनों में आदर सत्कार देवें क्योंकि ऐसे किये बिना किसी को अच्छे कामों में उत्साह नहीं हो सकता ।

२७—जो सेनाओं की रचनाओं और सेना के अंगों की शिक्षा वा रक्षा के विशेष ज्ञान को तथा पूर्ण युद्ध की सामग्री को इकट्ठा कर सकता है वही शत्रुओं को जीत लेने से अपनी और प्रजा की रक्षा करने के योग्य है ।

२८—मनुष्य को चाहिये कि जो पुर नगर और ग्रामों की अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला वा पूर्ण सेनाओं की सामग्री सहित

२६—नह्यत्र राजव्यवहारे केनचिद् गृहस्थेन विना, ब्रह्मचारिणो वनस्थस्य यतेर्वा प्रवृत्तेर्योग्यतास्ति । न कश्चित्सुमित्रैर्बन्धुवर्गैर्विना युद्धे शत्रून् पराजेतुं शक्नोति । न खल्वेवं भूतेन धार्मिकेण विना कश्चित्सेनाद्यधिपतित्व मर्हतीति वेदितव्यम् ।

३०—राजपुरुषा यदा यदा युद्धानुष्ठानाय प्रवर्तेरन् तदा तदा धन शस्त्र कोष यान सेनासामग्रीः पूर्णाः कृत्वा प्रशस्तेन सेनापतिना रक्षिता भूत्वा प्रशस्तविचारेण युक्तया च शत्रुभिः सह युद्धवा वा शत्रु पृतनाः सदाविजयेरन् । नैवं पुरुषार्थेन विना कस्यचित् खलु विजयो भवितु मर्हति तस्मादेतत्सदानुतिष्ठेयुः ।

जो कला कौशल तथा शस्त्र अस्त्रों से युद्ध क्रिया को जानता हो, और परिपूर्ण विद्या तपोबल से पुष्ट, शत्रुओं के पराजय से प्रजा की पालना करने में प्रसन्न होता है वही सेना आदि का अधिपति करने योग्य है, अन्य नहीं ।

२६—इस राज्य व्यवहार में, गृहस्थ को छोड़ किसी ब्रह्मचारी वनस्थ वा यति की प्रवृत्ति होने योग्य नहीं है और न कोई अच्छे मित्र और बन्धु जनों के विना युद्धमें शत्रुओं को परास्त कर सकता है । ऐसे धार्मिक विद्वानों के विना कोई सेना आदि का अधिपति होने योग्य नहीं है, यह जानना चाहिये ।ऋ०१।सू०१००।मंत्र११ ।

३०—राज पुरुष जब जब युद्ध करने को प्रवृत्त होवें तब तब धन शस्त्र यान कोष सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशंसित सेना के अधीश से रक्षा को प्राप्त होकर प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्ध कर उनकी सेनाओं को सदा जीतें । ऐसे पुरुषार्थ के विना किये किसी की जीत होने योग्य नहीं । इससे इस बर्ताव को सदा बर्तें । म० १ । सू० ८३ । मन्त्र ६

मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य निरूपण प्रकरण

ओम् इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इम मध्वानं यमगाम दूरात् ।
अपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमि रस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ।

ऋ. म. १। ३१ सूक्त. मंत्र १६ ।

१—यदा मनुष्याः सत्यभावेन सन्मार्गं प्राप्तु मिच्छन्ति तदा जगदीश्वर स्तेषां सत्पुरुष संगाय प्रीतिजिज्ञासे जनयति ततस्ते श्रद्धालवः सन्तोऽति दूरेऽपि वसत आप्तान् योगिनो विदुष उपसंगम्याभीष्टं बोधं प्राप्य धार्मिका जायन्ते । शरणिम्: (अविद्यादि दोष हिंसिकां विद्याम्) ऋषिकृत्=ऋषीन् ज्ञानवतो मन्त्रार्थ द्रष्टृन् कृपयाध्यापनो पदेशाभ्यां करोति ।

२—यथा मनुष्यै स्तडिद्विद्ययाभीष्टानिकार्याणि संसाध्यन्ते

१—जब मनुष्य सत्य भाव से अच्छे मार्ग को प्राप्त होना चाहते हैं तब जगदीश्वर उनको उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने वाले विद्वानों का संग होने के लिये प्रीति और जिज्ञासा अर्थात् उनके उपदेश के जानने की इच्छा उत्पन्न करता है। इससे वे श्रद्धालु हुए अत्यन्त दूर भी बसने वाले सत्यवादी योगी विद्वानों के समीप जाय उनका संग कर अभीष्ट बोध को प्राप्त होकर धर्म्मात्मा होते हैं। [इस भावार्थ में ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि दयानन्द अपने जीवन के साथ आप बीती घटनाओं को अनुभव कर लिख रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने मंत्र में निर्दिष्ट मार्ग द्वारा ही बोध प्राप्त किया था।—सम्पादक]

२—जैसे मनुष्यों से बिजुली से सिद्ध की हुई तार विद्या से

तथैव पारिव्राट् संगेन सर्वा विद्याः प्राप्य धर्मादिकार्याणि कर्तुं प्रभूयन्ते । एताभ्या मेव व्यवहार परमार्थ सिद्धिः कर्तुं शक्या तस्मा-त्प्रयत्नेनतडिद्विद्याऽवश्यं साधनीया । ऋ. मंड १।११६ सू. । मं. १०

३—सर्वैं मनुष्यैः सत्याभ्यां विद्याभाषणाभ्यां युक्ता क्रिया कुशला सर्वोपकारिणी स्वकीया वाणी सदैव संभावनीयेति ।

ऋ. म. १। सू. ३। मन्त्र १०।

४—या किलाप्तानां सत्य लक्षण पूर्ण विद्या युक्ता छलादि दोष रहिता यथार्थ वाणी वर्तते सा मनुष्याणां सत्यज्ञानाय भवितु मर्हति नेतरेषामिति । ऋ. म. १। सू. ३। मंत्र ११

५—यथा वायुना चालितः सूर्येण प्रकाशितो जल रत्नोर्मि सहितो महान् समुद्रोऽनेक व्यवहार रत्न प्रदो वर्तते । तथैवास्या

चाहे हुए काम सिद्ध किये जाते हैं वैसे ही संन्यासी के संग से समस्त विद्याओं को पाकर धर्म आदि काम करने को समर्थ होते हैं । इन्हीं दोनों से व्यवहार और परमार्थ सिद्धि की जा सकती है । इससे यत्न के साथ तडित् तार विद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहिए ।

३–सब मनुष्यों को चाहिये कि वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ से सत्यविद्या और सत्य वचन युक्त कामों में कुशल सब के उपकार करने वाली वाणी को प्राप्त रहें, यह ईश्वर का उपदेश है।

४—आप्त अर्थात् पूर्ण विद्या युक्त और छल आदि दोष रहित विद्वान् मनुष्यों की सत्य उपदेश कराने वाली यथार्थ वाणी है वही सब मनुष्यों के सत्य ज्ञान होने के लिये योग्य होती है, अविद्वानों की नहीं ।

५—जैसे वायु से तरंग युक्त और सूर्य से प्रकाशित समुद्र अपने रत्न और तरंगों से युक्त होने के कारण बहुत उत्तम

काशस्थस्य वेदस्य महत: शब्द समुद्रस्य प्रकाशहेतुर्वेदवाणी विदु षामुपदेशक मनुष्याणां यथार्थतया मेधाविज्ञानप्रदो भवतीति ।

मंत्र १२। ऋ. म. १। सू. ३

६—सर्वेषां मनुष्याणा मियं योग्यतास्ति पूर्वं परोपकारिणं पण्डितं ब्रह्मनिष्ठं श्रोत्रियं पुरुषं विज्ञायैतेनैव सह प्रश्नोत्तर विधानेन सर्वा: शङ्कानिवारणीया: किन्तु ये विद्याहीना: सन्ति नैव केनापि तत्संग कथनोत्तर विश्वास: कर्तव्य इति ।

मन्त्र ४। ऋ. म० १। अनु. १। सू. ४।

७—सर्वै र्मनुष्यैराप्तविद्वत्संगेन मूर्ख संगत्यागेनेत्थं पुरुषार्थ: कर्तव्यो यत: सर्वत्र विद्या वृद्धि रविद्या हानिश्च मान्यानां सत्कारो दुष्टानां ताडनं चेश्वरोपासना पापिनां निवृत्ति र्धार्मिकाणां वृद्धिश्च नित्यं भवेदिति । मंत्र ५। ऋ. म. १। सू. ४।

व्यवहार को करता है वैसे ही वेदवाणी मेधा और विज्ञान देती है।

६—सब मनुष्यों की यही योग्यता है कि प्रथम सत्य का उपदेश करने हारे वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानों को प्राप्त होकर अच्छी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब शंका निवृत्त करें। किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का संग वा उनके दिये हुए उत्तरों में विश्वास कभी न करें।

७—सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का संग कर और मूर्खों के संग को सर्वथा छोड़ के ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिससे सर्वत्र विद्या की वृद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार, दुष्टों को दण्ड ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश नित्य होता रहे।

८—यदा सर्वे मनुष्या विरोधं विहाय सर्वोपकारकरणे प्रयतन्ते तदा शत्रवोऽप्यविरोधिनो भवन्ति यतः सर्वान् मनुष्यानीश्वरानुग्रहनित्यानन्दौ प्राप्नुतः। ऋ० मंड १। सू. ४। मंत्र ६

९—ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्योपरि कृपां दधाति नालसस्य कुतः। यावन्मनुष्यः स्वयं पूर्णं पुरुषार्थं न करोति नैव तावदीश्वर कृपा प्राप्तान् पदार्थान् रक्षितुमपि समर्थो भवति। अतो मनुष्यैः पुरुषार्थवद्भिर्भूत्वेश्वरकृपेष्टव्येति। ऋ. म. १। सू. ४। मंत्र ७।

१०,११—हे विद्वान्सो मनुष्या यो महान्सुपारः सुन्वतः सखारायो ऽवनिः करुणामयोऽस्ति यूयं तस्मै तामन्द्रायेन्द्रं परमेश्वर मेव गानत नित्य मर्चत। नैव केनापि केवलं परमेश्वरस्य स्तुतिमात्र करणेन

८—जब सब मनुष्य विरोध को छोड़ कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा से व निरंतर उत्तम आनन्द प्राप्त होत हैं।

९—ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है आलस करने वाले पर नहीं। क्योंकि जब तक मनुष्य ठीक २ पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वर की कृपा और अपने किये हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा भी करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा के भागी होना चाहिये।

१०, ११—हे विद्वान् मनुष्यो! जो बड़ों से बड़ा (सुपारः) अच्छी प्रकार सब कामनाओं की परिपूर्णता करने हारा (सुन्वतः) प्राप्त हुए सोम विद्या वाले धर्मात्मा पुरुष को (सखा) मित्रता से सुख देने तथा रायः विद्या सुवर्ण आदि धन का (अवनिः) रक्षक और इस संसार में उक्त पदार्थों में जीवों को पहुँचाना और

संतोष्टव्यं किन्तु तदाज्ञायां वर्तमानेन स नः सर्वत्र पश्यतीत्यधर्मान्नि वर्तमानेन तत्सहायेच्छुना मनुष्येण सदैवोद्योगे प्रवर्तितव्यम् ।
ऋ॰ मं. १। सू. ४। मन्त्र १०

१२—यावन्मनुष्या हठच्छलाभिमानं त्यक्त्वा संप्रीत्या परस्परो पकाराय मित्रवन्न प्रयतन्ते तावन्नैवेतेषां कदाचिद्विद्या सुखोन्नति र्भवतीति । ऋ० म० १। सू० ५। मंत्र १

१३—ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्य सहायकारी भवति नेतरस्य तथा वायुरपि पुरुषार्थेनैव कार्यं सिद्धयुपयोगी भवति । नैव कस्य चिद्विना पुरुषार्थेन धनवृद्धिलाभो भवति । नैवेताभ्यां विना कदाचि दुत्तमं सुखं च भवतीत्यतः सर्वैर्मनुष्यैरुद्योगिभिराशीर्मद्भि- र्भवितव्यम् । ऋ० म० १ । सू० ५ । मंत्र ३

उनका देने वाला करुणामय परमेश्वर है (तस्मै) उसकी तुम लोग (गायत) नित्य पूजा किया करो ।

१०, ११—किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्तुति मात्र ही करने से संतोष न करना चाहिये किन्तु उसकी आज्ञा में रह कर और ऐसा समझ कर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता है इसलिये अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्तमान रहना चाहिए ।

१२—जब तक मनुष्य हठ छल और अभिमान को छोड़ कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करने के लिये तन मन और धन से यत्न नहीं करते तब तक उनके सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती ।

१३—ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायकारी होता है आलसी का नहीं । तथा स्पर्शवान् वायु भी पुरुषार्थ ही से कार्य सिद्धि का निमित्त होता है क्योंकि किसी प्राणी को पुरुषार्थ के बिना धन

१४—न यावन्मनुष्याः परमेश्वरेष्टा बलवन्तश्च भवन्ति नैवताव-दृष्टानां शत्रूणां नैर्बल्यंकर्तुं शक्तिर्जायत इति। ऋ०म० १।सू० ५ मंत्र ४।

१५—ईश्वरेण सर्वेषां जीवाना मुपरि कृपां कृत्वा कर्मानुसारेण फलदानाय सर्वं कार्यजगद्रच्यते पवित्रीयते चैवं पवित्र कारकौ सूर्य पवनौ च तेन हेतुना सर्वे जड़ाः पदार्थाः जीवाश्च पवित्राः सन्ति। परन्तु ये मनुष्याः पवित्र गुण कर्म ग्रहणे पुरुषार्थिनो भूत्वै तेभ्यो यथावदुपयोगं गृहीत्वा ग्राहयन्ति त एव पवित्रा भूत्वा सुखिनो भवन्ति। ऋ० म० १। सू० ५। मंत्र ५

१६—ईश्वर ईदृशाय जीवायाशीर्वादं ददाति। यदायो विद्वान् परोपकारी भूत्वा मनुष्यो नित्य मुद्योगं करोति तदैव सर्वेभ्यः

वा वुद्धि उत्तम सुख का लाभ कभी नहीं हो सकता इसलिये सब मनुष्यों को उद्योगी अर्थात् पुरुषार्थी आशावाले अवश्य होना चाहिये।

१४—जब तक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपने इष्टदेव समझने वाले और बलवान् अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने को सामर्थ भी नहीं होता।

१५ – जब ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिये सब कार्यरूप जगत् को रचा और पवित्र किया है तथा पवित्र करने कराने वाले सूर्य और पवन को रचा है उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं परन्तु जो मनुष्य पवित्र गुण कर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर संसारी पदार्थों से यथावत् उपयोग लेते तथा सब जीवों को उनके उपयोगी कराते हैं वे ही मनुष्य पवित्र और सुखी होते हैं।

१६—ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है कि जो मनुष्य विद्वान् परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन

पदार्थेभ्यः उपकारं संगृह्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति स सर्वं सुखं प्राप्नोति नेतर इति । ऋ० म० १ । सू० ५ । मंत्र ७

१७—नैव कोऽपि मनुष्योऽन्यायेन कंचिदपि प्राणिनं हिंसितु मिच्छेत किन्तु सर्वैः सह मित्रता माचरेत् । यथेश्वरः कंचिदपि नाभिद्रुह्यति तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठातव्यमिति ।

ऋ० म० १ । सू० ५ । मंत्र १०

१८—हे मर्त्या यो जगदीश्वरोऽकेतवे केतु मपेशसे पेशः कृण्वन् सन् वर्तते तं सर्वा विद्याश्च समुषद्भिः सह समागमं कृत्वा यूयं यथा वद्विजानीत तथा हे जिज्ञासो मनुष्य ! त्वमपि तत्समागमे-नाथाऽजायथाः एत द्विद्या प्राप्य प्रसिद्धोभव ।

मनुष्यैः रात्रेश्चतुर्थे प्रहर आलस्यं त्यक्त्वोत्थाय ज्ञान दारिद्र्य विनाशाय नित्यं प्रयत्नवद्भिः भूत्वा परमेश्वरस्य ज्ञानं पदार्थेभ्य उप-

---

सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुख युक्त करता है, वही सदा सुख को प्राप्त होता है—अन्य कोई नहीं ।

१७—कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे । किन्तु परस्पर सब मित्र भाव से वर्ते; क्योंकि जैसे परमेश्वर बिना अपराध से किसी का तिरस्कार नहीं करता वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिए ।

१८—हे मनुष्य लोगो जो परमात्मा (अकेतवे) अज्ञान रूपी अन्धकार के विनाश के लिये (केतुं) उत्तम ज्ञान और (अपेश-से) निर्धन दारिद्र्य तथा कुरूपता के विनाश के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप को (कृण्वन्) करता हैं उस को तथा सब विद्याओं को (समुषद्भिः) जो ईश्वर की आज्ञा के अनु-कूल वर्तने वाले हैं उनसे मिलकर जान के (अजायथाः) प्रसिद्ध हूजिए । तथा हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू भीं उस

कारग्रहणं च कार्यमिति । ऋ० म० १ । सू० ६ । मंत्र ३

१९—मनुष्या एवेश्वरं प्राप्तुं समर्थास्तेषां ज्ञानोन्नति करण स्वभाववत्त्वात् । धर्मात्मनो मनुष्याणामेव प्राप्तुमीश्वरस्य स्वभाव वत्त्वाद्यथैत एतं प्राप्नुवन्ति तथेश्वरेण नियोजितत्वादयं सूर्योपि स्वसंनिहितान् लोकानाकर्षितुं समर्थोस्तीति । ऋ. म० १ सू. ७ । मं. ८ ।

२०—यः सर्वाधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी व्यापकः सर्वैश्वर्यप्रदोऽद्वितीयोऽसहायो जगदीश्वरः सर्वजगतो रचको धारक आकर्षण कर्तास्ति स एव सर्वैर्मनुष्यैरिष्टत्वेन सेवनीयोऽस्ति । य कश्चित्तं

परमेश्वर के समागम से (अजायथाः) इस विद्या को यथावत् प्राप्त हो ।

मनुष्यों को प्रति रात्रि के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़ कर फुरती से उठ कर अज्ञान और दरिद्रता के विनाश के लिये प्रयत्न वाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और संसारी पदार्थों से उपकार लेने के लिये उत्तम उपाय सदा करना चाहिए ।

१९—मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि वे ज्ञान की वृद्धि करने के स्वभाव वाले होते हैं । और धर्मात्मा ज्ञान वाले मनुष्यों का परमेश्वर को प्राप्त होने का स्वभाव है । तथा जो ईश्वर ने रचकर कक्षा में स्थापन किया हुआ सूर्य है, वह अपने सामने अर्थात् समीप के लोकों को चुंबक पत्थर और लोहे के समान खींचने को समर्थ रहता है ।

२०—जो सबका स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य का देने वाला जिसमें कोई दूसरा ईश्वर और, जिसको किसी दूसरे के सहाय की इच्छा नहीं है वही सब मनुष्यों को इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है । जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे

विहायान्यमीश्वर भावेनेष्टं मन्यते स भाग्यहीनः सदा दुःखमेव प्राप्नोति । ऋ. म. १ । सू. ७ । मं. ६ ।

२१—हे मनुष्याः युष्माभिर्नैव कदाचिन्मां विहायान्य उपास्य देवोमन्तव्यः । कुतः नैवं मत्तोऽन्यः कश्चिदीश्वरो वर्तते । एवं सति यः कश्चिदीश्वरत्वेऽनेकत्वमाश्रयति स मूढ़ एव मन्तव्य इति ।
ऋ. म. १ । सू. ३ । मंत्र १०

२२—हे इन्द्र कृपयाऽस्मदूतये वर्षिष्ठं सानसिं सदासहं सजित्वानं रयिमाभर ।

को इष्टदेव मानता है वह भाग्यहीन बड़े बड़े घोर दुःखों को सदा प्राप्त होता है ।

२१—हम लोग जिस (विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (परि) उत्तम २ गुणों (करके) के कारण श्रेष्ठतर (इन्द्र) पृथिवी में राज्य देने वाले परमेश्वर का (हवामहे) वार २ अपने हृदय में स्मरण करते हैं वही परमेश्वर (वः) हे मित्र लोगो तुम्हारे और हमारे पूजा करने योग्य इष्टदेव (केवल) चेतन मात्र स्वरूप एक ही है ।

हे मनुष्यो तुमको अत्यन्त उचित है कि मुझे छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो क्योंकि एक मुझ को छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है । जब वेद में ऐसा उपदेश है तो जो मनुष्य अनेक ईश्वर व उसके अवतार मानता है, वह सबसे बड़ा मूढ़ है ।

२२—हे (इन्द्र) परमेश्वर आप कृपा करके हमारी (ऊतये) रक्षा पुष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिये (वर्षिष्ठं) जो अच्छी प्रकार वृद्धि करने वाला (सानसिं) निरन्तर सेवने के योग्य (सदासहं) दुष्ट शत्रु तथा हानि व दुःखों के सहने का मुख्य हेतु (सजित्वानं)

मनुष्यैः सर्वशक्तिमन्त मन्तर्यामिन मीश्वर माश्रित्य परम पुरुषार्थेन च सर्वोपकराय चक्रवर्ति राज्यानन्द कारकं विद्याबलं सर्वोत्कृष्टं सुवर्ण सेनादिकं च बलं च सर्वथा संपादनीयम्। यतः स्वस्य सर्वेषां च सुखं स्यादिति। ऋ. म. १। सू. ८। मंत्र ११

२३—हे मनुष्या यूयं सर्वैः सह सखायो भूत्वाऽश्वारथमिव सखीन्सत्कर्मसु सद्यः प्रवर्तयत। श्रेष्ठ मार्ग इवास्मान्सरले व्यवहारे गमय। येऽत्र जगति सूर्यवच्छुभ गुणान्विताः सर्वात्मनः प्रकाश्य सुखं जनयेयुस्तेऽस्माभिः सत्कर्तव्याः स्युः।

ऋ. म. १। सू. ६१। मं. २।

२४—मनुष्यैर्यथा परमेश्वरं स्तुत्वा प्राथयित्वोपास्य सुखं

और तुल्य शत्रुओं का जिताने वाला (रयि) धन है उसको (आभर) अच्छी प्रकार दीजिये।

सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्ति राज्य के आनन्द को बढ़ाने वाली विद्या की उन्नति सुवर्ण आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार से रखना चाहिये। जिससे अपने आपको और सब प्राणियों को सुख हो।

२३—मनुष्यों को चाहिये कि वह सब लोगों के साथ मित्र होकर, जैसे घोड़े रथ को मार्ग पर चलाते हैं वैसे अपने मित्रों को सदा सत्कर्मों में प्रवृत्त करो। सरल व्यहार रूपी श्रेष्ठ मार्ग पर हमें चलाओ। इस संसार में जो लोग सूर्य की तरह उत्तम गुणों से युक्त होकर सबके आत्माओं को विद्या से प्रकाशित करते हैं और उन्हें सुखी करते हैं हमें ऐसे परोपकारी सज्जनों की पूजा और सत्कार करना चाहिए।

२४—जिस तरह परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना

कश्चिन्नभ्रमो भवितुं शक्नोति तस्मादेतत्सदान्वाचरणीयम् ।

ऋ० मण्ड १ । अ० १२ । सू० ७३ । मंत्र १ ।

३७—केचिदपि मनुष्याः ब्रह्मचर्य सेवनेन बिना सांगोपांगविद्याः प्राप्तुं न शक्नुवन्ति । विद्याशक्तिभ्यां विना राज्याधिकारं लब्धुं नार्हन्ति नचैतद्विरहाः जनाः सत्यानि सुखानि प्राप्तु मर्हन्ति ॥

ऋ. म. १ । सू. ८३ । म. ४ ।

३८—यदि मनुष्यैः सन्मार्गे स्थित्वा सत्क्रियाभिर्विज्ञानेन च परमेश्वरं विज्ञाय मोक्ष सुख मिष्यते तर्ह्यवश्यं ते मुक्ति मश्नुते ।

ऋ. म. १ । सू. ८३ म. ५ ।

३९—मनुष्यैः प्रशंसित कर्मणानुपमेन सततं सुखप्रदेन धार्मिकेण मनुष्येण सदैव मित्रतां कृत्वा परस्परं हितोपदेशः कर्तव्यः ।

१९ मंत्र । ऋ. म. १ । सू. ८४ ।

रहित निर्भ्रम नहीं हो सकता । इस लिये मनुष्यों को सदा विद्वत्संग सुविचार और विद्याधर्मानुष्ठान और विद्वान् परिव्राजक भ्रमणशील अतिथियों के उपदेश सदा सुनने का प्रबन्ध करना चाहिए ।

३७—कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े बिना सांगोपांग विद्याओं को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते और विद्या सत्कर्म (शक्ति) के बिना राज्याधिकार को प्राप्त होने योग्य नहीं होते । उक्त प्रकार (के गुणों से) से रहित मनुष्य सत्य सुख को प्राप्त नहीं हो सकते ।

३८—मनुष्यों को चाहिए कि सत्य मार्ग में स्थित होके सत्क्रिया और विज्ञान से परमेश्वर को जान के मोक्ष की इच्छा करें । वे विद्वान् मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।

३९—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम कर्म करने (वाले) असाधारण सदा सुख देने हारे धार्मिक मनुष्य के साथ ही मित्रता रकके एक दूसरे को सुख देने का उपदेश किया करें ।

४०—त एव धार्मिका मनुष्याः सन्ति येषां तनुर्मनो धनानि च सर्वान् सुखयेयुः। त एव प्रशंसिता भवन्ति ये जगदुपकाराय प्रयतन्ते। मन्त्र. २०। ऋ. म. १। सू. ८४।

४१—मनुष्यैः परस्परं प्रीत्या पुरुषार्थेन विद्याः प्राप्य दुष्ट स्वभाव गुणमनुष्यान् निवार्य कार्य सिद्धिर्नित्यं कार्येति।

ऋ. म. १। सू. ८६। म. ६।

४२—मनुष्यै रिमं देह माश्रित्य पितृभावेन परमेश्वरस्याज्ञा-पालन रूप प्रार्थनां कृत्वोपास्योपदिश्य जगत्पदार्थ गुण विज्ञानोप-कारान् संगृह्य जन्मसाफल्यं कार्यम्॥ ऋ. म. १। सू० ८७। म० ५।

४३—ये मनुष्याः प्रतिदिनं सृष्टि पदार्थ विद्यां लब्ध्वाऽनेकोप कारान् गृहीत्वा तद्विद्याऽध्ययनाध्यापनै र्वाग्मिनो भूत्वा शत्रून्

४०—वे ही धार्मिक मनुष्य हैं जिनका शरीर मन और धन सबको सुखी करे। वे ही प्रशंसा के योग्य हैं कि जो जगत् के उप-कार के लिये यत्न करते हैं।

४१—मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर प्रीति और पुरुषार्थ के साथ विद्युत् आदि पदार्थ विद्या और अच्छे २ गुणों को पाकर दुष्ट स्वभावों और दुर्गुणी मनुष्यों को दूर कर नित्य अपनी कामना सिद्ध करें।

४२—मनुष्यों को चाहिए कि इस मनुष्य देह को पाकर पितृ भाव से परमेश्वर की आज्ञा पालन रूप, प्रार्थना उपासना और परमेश्वर का उपदेश संसार के पदार्थ और उनके विशेष ज्ञान से उपकारों को लेकर अपने जन्म को सफल करें।

४३—जो मनुष्य प्रतिदिन सृष्टि पदार्थ विद्या को या अनेक उप-कारों को ग्रहण कर उस विद्या के पढ़ने और पढ़ाने से वाणीकुशल—अर्थात् बातचीत में कुशल हों और शत्रुओं को जीतकर अच्छे

३०—सर्वे जीवा अनादय: सन्त्येतेषां मध्ये ये मनुष्यदेह धारिणः सन्ति तान् प्रतीश्वर उपदिशति । हे मनुष्याः सर्वे यूयं वेदानधीत्याध्याप्याज्ञान विरहा, ज्ञानवन्तः पुरुषार्थिनो भूत्वा सुखिनो। भवतं नहि वेदार्थ ज्ञानेन विना कश्चिदपि मनुष्यः सर्व विद्याः प्राप्तुं शक्नोति तस्माद् वेद विद्या वृद्धिं सम्यक् कुरुत । ऋ० म० १ । सू० ७२ मंत्र २

३१—नहिकश्चिदपि वेदाननधीत्य विद्याः प्राप्नोति नहि विद्याभिर्विना मनुष्य जन्म साफल्यं पवित्रता च जायते तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैः एतत्कर्म प्रयत्नेन सदैवानुष्ठेयम् । ऋ० म० १।सू० ७२।मं० ३

३२—मनुष्यैर्विदुषा मनुकरणं कार्यं न किलाऽऽविदुषाम् । यथा सत्पुरुषाः सत्कार्येषु प्रवर्तन्ते दुष्टानि कर्माणि त्यजन्ति तथैव सर्वमनुष्ठेयमिति । ऋ० मण्ड १ । सू० ७२ । मन्त्र ६ ।

३०—सब जीव अनादि हैं उनमें मनुष्य देहधारी जीवों को ईश्वर उपदेश देता है । हे मनुष्यो तुम लोग वेदों को स्वयं पढ़ कर और दूसरों को पढ़ा कर अज्ञान को छोड़ कर ज्ञानी बनकर पुरुषार्थी होकर सुखी बनो । वेदार्थ ज्ञान के बिना कोई भी मनुष्य सब विद्याओं को प्राप्त नहीं कर सकता; इस लिये वेद विद्या की वृद्धि सम्यक् प्रकार से करें ।

३१—कोई भी मनुष्य वेद विद्या को पढ़े बिना विद्वान् नहीं हो सकता । और विद्याओं के बिना मनुष्य जन्म की सफलता और पवित्रता नहीं हो सकती अतः सब मनुष्यों को यह काम प्रयत्न के साथ सदा करना चाहिए ।

३२—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करें मूर्खों का नहीं । जिस प्रकार सत्पुरुष अच्छे कार्यों में प्रवृत्त होते हैं और दुष्ट कर्मों को छोड़ते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को करना चाहिये।

३३—मनुष्याणा मियं योग्यतास्ति यादृशींविद्यां स्वयं प्राप्नुयात्तादृशीं सर्वेभ्यो नैष्कापट्येन सदादद्युः यतो मनुष्याः सर्वाणि सुखानिलभेरन् । ऋ० मण्ड १ । सू० ७२ । मंत्र ८ ।

३४—मनुष्यैर्विद्वद्वत्स्वसंतानान् सुशिक्षा विद्यायुक्तान् कृत्वा धर्मार्थ काम मोक्षान् प्राप्यताम् । ऋ० मण्ड १ । सू० ७२ मंत्र ९

३५—हे मनुष्याः यथायोग्यं विदुषा माचरणं स्वीकुरुत । नैवाविदुषाम् । यथा नद्यः सुखानि सृजन्ति तथा सर्वेभ्यः सर्वाणि सुखानि सृजत । ऋ० मण्ड १ । सू० ७२ । मन्त्र १० ।

३६—न खलु विद्याधर्मानुष्ठान विद्वत्संगसुविचारैर्विना कस्यचिन्मनुष्यस्य विद्या सुशिक्षा साक्षात्कारो विद्युदादि पदार्थ विज्ञानं च जायते । नहिखलु नित्यं भ्रमणशीलानां विदुषामतिथीनामुपदेशेन विना

३३—मनुष्यों के लिए उचित और योग्य है कि स्वयं जैसी विद्या प्राप्त करें । उसे सब मनुष्यों को निष्कपट छल रहित भाव से दान दें जिससे मनुष्य सब सुखों को प्राप्त करें ।

३४—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की भांति अपने संतानों को सुशिक्षा और विद्या से युक्त करके धर्मार्थ काम मोक्ष (अमृत) को प्राप्त हों ।

३५—हे मनुष्यो विद्वानों का यथा योग्य आचरण अपने लिये स्वीकार करो । अविद्वानों का नहीं । जिस प्रकार नदिएं सब के लिये सुखों को देती हैं वैसे मनुष्यों को भी सब को सुख देने चाहिए ।

३६—विद्या धर्मानुष्ठान विद्वत्संग और सुविचार के बिना कोई मनुष्य विद्या और सुशिक्षा का साक्षात्कार और विद्युदादि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । नाहीं नित्य भ्रमण करने वाले विद्वान् अतिथियों के उपदेशों के विना, कोई मनुष्य भ्रम

लभ्यते तथा सभाद्यध्यक्ष माश्रित्य व्यावहारिक पारमार्थिक सुखे संप्रापणीये इति । म. १ । सू. ६२ । मन्त्र १

२५—हे मनुष्याः यथा विद्वांसो वेदसृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणैः प्रतिपादितेन धर्मेण मार्गेण गच्छन्तः सन्तः परमात्मान मभ्यर्च्य सर्वहितं धरन्ति तथैव यूयमपि समवतिष्ठध्वम् ।

म. १ । सू० ६२ । मंत्र ३

२६—मनुष्यैर्मातृवत् प्रजायां वर्तित्वा सूर्यवद् विद्यादि सद्गुणान् प्रकाश्येश्वरोक्तायां विद्वदनुष्ठितायां नीतौ स्थित्वा सर्वोपकारं कर्मकृत्वा सदा सुखयितव्यम् ।

म. १ । सू. ६२ । मन्त्र ४

करने से मनुष्यों को सुख प्राप्ति होती है, उसी प्रकार से सभाध्यक्ष आदि का सहारा लेकर व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख प्राप्त करना चाहिए ।

२५—हे मनुष्यो जिस प्रकार विद्वान् लोग वेद सृष्टि क्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के अनुकूल प्रतिपादित धर्म मार्ग पर चलते हुए सब मनुष्य मात्र का हित करते हैं । उसी प्रकार से तुमको भी चाहिए कि धर्म मार्ग पर चलते हुए सव मनुष्य मात्र का हित करो ।

२६—मनुष्यों को चाहिये कि जनता के साथ माता की तरह व्यवहार करना चाहिए । सूर्य की भांति प्रजा में विद्यादि सद्गुणों का प्रकाश कर ईश्वर द्वारा उपदिष्ट और विद्वानों द्वारा अनुष्ठित आचरण में लाई गई, कार्यनीति तथा कार्य पद्धति को स्वीकार करते हुए सब मनुष्य मात्र का उपकार करने वाले, कर्म करते हुए सुख प्राप्त करने चाहिये ।

२७—पुरुषै रुषोवत सूर्यवत् किरणवत् प्राणवच्च सद्गुणान् प्रकाश्य दुष्ट निवारणं कार्यम्। यथा सूर्यः स्वप्रकाशं विस्तार्य मेघ मुत्पाद्य वर्षयति तथैव प्रजासु सद्विद्यामुत्पाद्य सुखवृष्टिः कार्येति।

ऋ० म० १। सू० ७१। मंत्र ५

२८—मनुष्यैः श्रेष्ठतमानि कर्माणि संसेव्य यज्ञमनुष्ठाय राज्यं पालयित्वा सर्वासु दिक्षु कीर्ति वृष्टिः संप्रसारणीयेति।

ऋ० म० १। सू० ७१। मंत्र ६

२९—विद्वद्भिर्यथाऽहोरात्रः पक्वापक्व रसोत्पादक उत्पन्न द्रव्य वृद्धि क्षय करः सर्वेषां मित्रवद्वर्तते तथा सर्वैर्मनुष्यैः सहवर्तितव्यम्

म० १। सू० ६२ मंत्र ९

२७—मनुष्यों को चाहिए कि उषा, सूर्य किरण और प्राणशक्ति की भांति सद्गुणों का—प्रकाश कर दुष्टों का निवारण करना चाहिए। (दुष्टों की निन्दा व चर्चा के स्थान पर सद्गुणों के प्रकाश पर विशेष बल देना चाहिए सम्पादक) जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश का विस्तार कर उसके द्वारा मेघ को पैदा कर वर्षा करता है उसी प्रकार से मनुष्यों को चाहिए कि प्रजाओं में जनता में सद्विद्या का विस्तार कर उसके द्वारा सुखों की वर्षा करें।

२८—मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठ कर्मों का सेवन करें। शिल्पादि यज्ञ का अनुष्ठान करें। राज्य का पालन करें। ऐसा करने से ही सब दिशाओं में कीर्ति की वर्षा करें।

२९—जिस प्रकार दिन रात सब मनुष्यों के लिये पक्व अपक्व रसों को पैदा कर और फिर उनकी वृद्धि क्षय करते हैं उसी प्रकार से विद्वानों को सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

जित्वा शुद्धाचारे वर्तन्ते त एव सर्वदा सुखिनो भवन्ति।
ऋ० म० १। सू० ८७। मं० ५

४४—नहि मनुष्याणां सर्वगुण सम्पन्नेन सेनाध्यक्षेण सर्व-गुणाकारकाभ्यां सोमाद्योषधिगण विज्ञान सेवनाभ्यां च विना कदाचिदुत्तम राज्यमारोग्यं च भवितुं शक्यम। तस्मादेतदाश्रय: सर्वै: सर्वदाकर्तव्य:। ऋ. म. १। सूक्त ९१। मन्त्र २१

४५—मनुष्यै: प्रात: काल मारभ्य कालविभागयोग्यान् व्यवहारान् कृत्वैव सर्वाणि सुख साधनानि सुखानि च कर्तुं शक्यन्ते तस्मादेतन्मनुष्यैर्नित्यमनुष्ठेयम्। ऋ.म.१। सू.९२।मन्त्र१३

४६—मनुष्यै: प्रत्युष: काल मुत्थाय यावच्छयनं न कुर्युस्ता-वन्निरालस्यतया परम प्रयत्नेन विद्याधनराज्यानि धर्मार्थकाम-मोक्षाश्च साधनीया:। ऋ० म. १। स. ९२। मन्त्र १४

आचरण में वर्तमान होते हैं वे ही सब कभी सदा सुखी होते हैं।

४४—मनुष्यों को सब गुणों से युक्त सेनाध्यक्ष और समस्त गुण करने वाले सोमलता आदि औषधियों के विज्ञान और सेवन के विना कभी उत्तम राज्य और आरोग्यपन प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये उक्त प्रवन्धों का आश्रय सबको करना चाहिये।

४५—लोगो, प्रात: समय से लेके, समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और जो सुख किये जा सकते हैं, इससे उनको यह अनुष्ठान नित्य करना चाहिए।

४६—लोगों को चाहिए कि प्रति दिन प्रात:काल सोने से उठ कर, जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन भर निरा-लसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सब उत्तम उत्तम पदार्थों को सिद्ध करें।

४७—नहि प्रतिदिनं सततं पुरुषार्थेन विना मनुष्याणामैश्वर्यं प्राप्तिर्जायते तस्मादेवं तैर्नित्यं प्रयतितव्यं यत ऐश्वर्यं वर्धेत।

ऋ. म. १। सू. ६२ मन्त्र १५

४८—ये विद्वांसो वायु वृष्टि जलौषधि शुद्ध्यर्थं सुसंस्कृतं हविरग्नौ हुत्वोत्तमान् सोमलतादीन् प्राप्य तैः प्राणिनः सुखन्ति च ते शरीरात्मबल युक्ताः सन्तः पूर्णसुखमायुः प्राप्नुवन्तिनेतरे।

ऋ. म. १। सू. ६३। मन्त्र ३

४९—ये मनुष्याः क्रिया यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्ति तेऽस्मिञ्जगति महत्सौभाग्यं प्राप्नुवन्ति। म. १। सू० ६३। मन्त्र १०

५०—ये मनुष्या विदुषा सङ्गमाश्रित्य विद्यामग्नि कार्याणि च साद्धुं सहन शीलतां दधते ते प्रज्ञाक्रियावन्तो भूत्वा सुखिनो भवन्ति। ऋ. म. १। स. ६४। मन्त्र ३

४७—प्रतिदिन निरन्तर पुरुषार्थ के बिना लोगों को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती इससे उनको चाहिये कि ऐसा पुरुषार्थ नित्य करें जिससे ऐश्वर्य बढ़े।

४८—जो विद्वान् वायु वृष्टि जल और और औषधियों की शुद्धि के लिये अच्छे संस्कार किये हुए हवि को अग्नि के बीच होम के श्रेष्ठ सोमलतादि औषधियों की प्राप्ति कर उनसे प्राणियों को सुख देते हैं वे शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हुए पूर्ण सुख करने वाली आयु को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं।

४९—जो मनुष्य क्रिया रूपी यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। वे इस संसार में अत्यन्त सौभाग्य को प्राप्त होते हैं।

५०—जो लोग विद्वानों के संग का आश्रय लेकर विद्या और अग्नि कार्यों के सिद्ध करने के लिये सहनशीलता को धारण करते हैं। वे प्रबल विज्ञान और अनेक क्रियाओं से युक्त होकर सुखी होते हैं।

५१—मनुष्यै र्वेद सृष्टि क्रम प्रमाणैः सत्पुरुषस्येश्वरस्य विदुषो वा कर्म शीलं च धृत्वा सर्वैः प्राणिभिः सह मित्रता माचर्य सर्वदा विद्या धर्म शिक्षोन्नतिः कार्या । ऋ. म. १ । सू. १४ । म १४

५२—मनुष्या गवादीन् संरक्ष्योन्नीय वैद्यक शास्त्रानुसारेण तेषां दुग्धादीनि सेवमाना बलिष्ठा अत्यैश्वर्य युक्ताः सततं भवन्तु । यथा कश्चिदुपसाधनेन युक्त्या क्षेत्रं निर्माय जलेन सिञ्चन्नादि युक्तो भूत्वा बलैश्वर्येण सूर्यवत्प्रकाशते तथैवैतानि स्तुत्यानि कर्माणि कुर्वन्तः प्रदीप्यन्ताम् । म. १ सू. १२१ । मंत्र ६

५३—ये मनुष्याः पशुपालन वर्द्धनाद्याय वनानि रक्षित्वा तत्रै

५१—मनुष्यों को चाहिए कि वेद प्रमाण और संसार के बार बार होने न होने आदि व्यवहार के प्रमाण तथा सत्पुरुषों के वाक्यों से वा ईश्वर और विद्वान् के काम व स्वभाव को जी में धर सब प्राणियों के साथ मित्रता वर्त कर सब दिन विद्या धर्म की शिक्षा की उन्नति करें।

५२—मनुष्य गौ आदि पशुओं को राख (रख कर) और उनकी वृद्धि कर वैद्यक शास्त्र के अनुसार इन पशुओं के दूध आदि को सेवते हुए बलिष्ठ और अत्यन्त ऐश्वर्य युक्त निरन्तर हों जैसे कोई हल पटेला आदि साधनों से युक्ति के साथ खेत को सिद्ध कर जल से सींचता हुआ अन्न आदि पदार्थों से युक्त होकर बल और ऐश्वर्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होता है, वैसे इन प्रशंसा योग्य कामों को करते हुए प्रकाशित हों।

५३—जो मनुष्य पशुओं के पालन तथा वर्धन वृद्धि के लिये बनों को सुरक्षित कर उनमें इन पशुओं को चरा कर दूध आदि का सेवन कर, कृषि आदि कार्यों को यथावत् नियमपूर्वक करते

ताञ्चारयित्वा दुग्धादीनि सेवित्वा कृष्यादीनि कर्माणि यथावत् कुर्यस्ते राज्यैश्वर्येण सूर्य इव प्रकाशमाना भवन्ति नेतरे गवादि हिंयका: म० १ । स० १२१ । मंत्र ७

इति दयानन्दोपनिषद: मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य
निरूपण प्रकरण समाप्तम् ।

वह राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त कर, सूर्य की भान्ति तेज से प्रकाशित होते हैं; परन्तु गौ आदि की हिंसा करने वाले नहीं ।

दयानन्दोपनिषद का मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य
प्रकरण समाप्त

दयानन्द उपनिषद का ऋग्वेदीय
प्रथम भाग समाप्त